॥ श्रीहरिः ॥

1681 ▲

भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं

जयदयाल गोयन्दका

1681

॥ श्रीहरिः ॥

भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
के प्रवचनोंसे संकलित

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

निवेदन

साधक भाई-बहनोंकी एक धारणा बन गयी है कि भगवत्प्राप्ति करनेके लिये एकान्तमें जाना, तीर्थस्थानमें जाना, वनमें जाना आवश्यक है। वहाँ जाकर कठोर परिश्रम, साधना-तपस्या करके ही भगवत्प्राप्ति सम्भव है। कई ऐसे प्रचलित भ्रम फैले हुए हैं कि स्त्री, शूद्र, वैश्य एवं गृहस्थोंका कल्याण नहीं होता। श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको जो गीताप्रेसके संस्थापक थे बहुत छोटी आयुमें ही भगवद्दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होनेसे इनका एकमात्र उद्देश्य जीवोंका कल्याण करनेका बन गया था। हमारी धारणामें अपने प्रवचनोंद्वारा जीवोंका उद्धार करनेका अधिकार भी उन्हें भगवान्‌से प्राप्त हो गया था। वे अपने उद्देश्यकी दिशामें ऋषिकेश गंगाके उस पार ग्रीष्मकालमें सत्संग-हेतु पधारते थे। वहाँ वटवृक्षके नीचे या गंगा-किनारे बालूपर सत्संग करते थे। उन्होंने अपने प्रवचनोंमें जो ऊपर लिखे भ्रम लोगोंमें फैले रहते हैं, उनका युक्तिसहित निराकरण किया है और सबके लिये भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं अपितु सहज है, सभी वर्गके भाई-बहनोंको भगवत्प्राप्ति सुगमतासे हो सकती है—इस आशयके प्रवचन दिये हैं। भगवत्प्राप्ति कठिन माननेसे कठिन और सुगम माननेसे सुगम है, यह साधककी मान्यता एवं श्रद्धापर निर्भर है, ऐसा बताया गया है।

माताएँ-बहनें पतिकी सेवासे, व्यापारी व्यापारसे, पुत्र पिताकी सेवासे, शिष्य गुरुकी सेवासे, गृहस्थ अतिथि-सेवासे भगवत्प्राप्ति कर सकते हैं। ये भाव उनके प्रवचनोंमें बहुत बार आये हैं। साधकको निराश होना ही नहीं चाहिये। नीचसे नीचको भी भगवत्प्राप्ति बहुत सुगमतासे हो सकती है।

उपर्युक्त भावोंका विवेचन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रवचनोंमें कहीं विस्तार और कहीं संक्षेपसे हुआ है। उन प्रवचनोंसे हम लाभान्वित हों इसलिये उन प्रवचनोंको पुस्तकरूप देकर प्रकाशित किया जा रहा है। जिन भाई-बहनोंने इन्हें सुना है उन्होंने विशेष लाभ उठाया है।

पाठकोंसे प्रेमपूर्वक निवेदन है कि इन प्रवचनोंको अवश्य पढ़ने-पढ़ानेकी कृपा करें।

—प्रकाशक

विषय-सूची

॥ श्रीहरि: ॥

दोष-त्याग करके भजन करनेका महत्त्व

सबसे बढ़कर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सबसे बहुत उत्तम बर्ताव होना चाहिये। सबके साथ सेवाभाव होना चाहिये यानि दूसरेको आराम पहुँचाना चाहिये। हमलोगोंमें सेवाभाव बहुत कम है। सेवा ही असली धन है, इसकी हमलोगोंमें बहुत कमी है।

प्राय: लोग अपने-अपने घर जाकर दूसरे-दूसरे कामोंमें फँस जाते हैं। ऐसा न करके जो कुछ भी साधन यहाँ करते हैं, उसके अनुसार घरपर भी साधन करना चाहिये। यहाँ दो महीने रहकर जो कुछ साधन किया, उससे घरपर भी प्रयत्न करना चाहिये। सत्संगमें जो बातें सुनी, घरपर दस महीने रहकर उसीका साधन करना चाहिये। जैसे पढ़नेवाला एक घंटा पढ़कर तीन चार घंटे उसका मनन करता है, इसी प्रकार यहाँ सीखकर दस महीने साधन करना चाहिये। जिस कामके लिये हमलोगोंका जन्म हुआ है उस कामको एक सालके भीतर ही पूरा करनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। यह सोचना चाहिये कि परमेश्वरका मेरे सिरपर हाथ है, इसलिये उसको करनेके लिये परमेश्वरपर आशा रखनी चाहिये। परमेश्वरकी सहायता पाकर विशेष सफल होना चाहिये। मालिककी दया है फिर क्या चिन्ता है। निर्भय होकर तत्परताके साथ साधन करना चाहिये। परमेश्वरके बलका आश्रय लेकर जो संसारमें विचरता है उसके कार्यकी सिद्धि शीघ्र होती है। हमें ईश्वरके बलपर प्रयत्नशील होना चाहिये। साधनके लिये गीताजीके दो श्लोक मुख्य हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(१०।९-१०)

वे निरन्तर मेरेमें मन लगानेवाले और मेरेमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन सदा ही मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको, मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मेरेको ही प्राप्त होते हैं।

हमारा जो प्रेम संसारमें बँटा हुआ है वह सारा प्रेम भगवान्‌में होना चाहिये। भगवान्‌में हमारा प्रेम दृढ़ हो इसका सबसे बढ़कर उपाय है कि सबसे भगवान्‌के लिये प्रेम करें।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

द्रौपदी, गोपियाँ, ध्रुव, प्रह्लाद, शबरी, तुलसीदास, सूरदास सबको भगवान् प्रेमसे ही मिले हैं। भगवान्‌से मिलनेके लिये सबसे बढ़कर साक्षात् उपाय भक्ति है। भक्ति कहो या प्रेम कहो दोनों एक ही हैं।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११।५४)

परन्तु हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्यभक्ति करके तो इस

प्रकार चतुर्भुजरूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।

भगवान्‌को छोड़कर और किसीमें भक्ति न होना अनन्यभक्ति है। अनन्यभक्ति होनेके लिये सत्संग और भगवन्नामका जप करना चाहिये। भगवान्‌के नामका जप कलिकालमें बहुत श्रेष्ठ है। भगवान्‌में प्रेम उत्पन्न होनेके लिये भजन, ध्यान एवं सत्संग करना चाहिये। इसीसे भगवान्‌में प्रेम होता है।

एक बात बहुत महत्त्वकी याद आयी है—हमलोगोंको सभी मनुष्योंको भगवान्‌में लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये। यदि हमने एक व्यक्तिको भी भगवान्‌की भक्तिमें लगा दिया तो बड़ी भारी दलालीका काम कर लिया। दलालीका फल भगवान् ही हैं। हरेक मनुष्यको लोभ देकर या उनकी सेवा करके भगवान्‌की भक्तिमें लगायें। भगवान्‌की भक्तिमें वही पुरुष दूसरोंको लगा सकता है जिसके आचरण अच्छे हों और स्वयं भक्ति करता हो। लोकदिखाऊ भक्ति करनेसे आचरणका सुधार नहीं होता।

अपनी योग्यता साधारण हो तो अपनी योग्यताके अनुसार ही दूसरेको भक्तिमें लगानेकी चेष्टा करे। एक स्त्री या पुरुष किसीको भी भगवान्‌की भक्तिमें लगा दिया तो तीर्थमें लाख रुपये दान देनेसे भी उसका महत्त्व बढ़कर है।

एक आदमी माला फेरता है, झूठ बोलता है, कपट करता है, गाली देता है तो उससे विशेष लाभ क्या है।

एक स्त्री घरवालोंसे लड़ाई करती है, वस्त्र और गहनोंके लिये पतिको तंग करती है ऐसी स्त्री घोर नरकोंमें जाती है। स्त्री पतिको परमेश्वर समझकर सेवा करे तो उसका बहुत शीघ्र

कल्याण हो जाता है। उसी स्त्रीकी बात दूसरी स्त्री भी सुनती है। जैसे संसारमें जो स्वयं नहीं करते और केवल दूसरोंको सुनाते ही हैं, उनका उपदेश दूसरोंको नहीं लगता। जिसमें त्याग, सदाचार, भक्ति नहीं हो, उसका असर दूसरेपर नहीं पड़ता। जिस स्त्रीकी खाने-पहननेमें आसक्ति हो, उसके व्याख्यान देनेका असर दूसरी स्त्रीपर नहीं पड़ता। जिसके भोजन और कपड़ोंमें सादगी आ गयी तो समझना चाहिये वह साधनकी ओर बढ़ रहा है। भोजन और वस्त्रकी सादगी परमात्माकी प्राप्तिका पहला चिह्न है। ये तो मामूली त्याग है। वैराग्यसे रहनेके लिये निश्चय करना चाहिये।

जमीनपर सोया तो क्या, खटियापर सोया तो क्या? मिष्ठान्न खाया तो क्या, सूखी रोटी खायी तो क्या?

कपड़ा खूब मोटा पहने जिससे स्वाभाविक वैराग्य हो। केवल सुने ही सुने, धारण नहीं करे तो मुक्ति नहीं होती। शौकीनीका नाम-निशान नहीं रहने दे। भोग, आराम, स्वाद—इन सबको विषके समान समझे। भगवान्‌के ध्यानके आनन्दके सामने ये मल-मूत्रके समान भी नहीं हैं। भगवान्‌का ध्यान लगानेपर आत्मा गद्गद हो जाती है। जिस शरीरसे परमेश्वरकी प्राप्ति हो जाती है उससे भोग-विलास आदिमें प्रेम करना, मल-मूत्रके साथ प्रेम करना है। जिसने भोगोंके साथ प्रेम किया उसका तो जन्म ही व्यर्थ गया। आनन्दसागरसे मित्रता छोड़कर इन भोगोंसे मित्रता करना महा मूर्खता है।

हरेक भाईको यह बात सोचनी चाहिये कि इस जन्ममें कार्यकी सिद्धि नहीं हुई तो मरनेपर क्या पता क्या होगा। पश्चात्ताप करके सुधार करना चाहिये और साधनमें जोश लाना चाहिये।

खान-पान सादगीका होना यह तो मामूली बात है। कंचन-कामिनीका त्याग, सांसारिक कार्य और विषयभोगोंका त्याग करना चाहिये। मनुष्यको खयाल रखना चाहिये कि स्त्रीके दर्शन न हो जायँ। यह साधनमें बड़ी ही बाधक है। उसी तरह स्त्रीको भी दूसरे पुरुषोंको देखना बाधक है। स्त्री-पुरुषका मेल विषय-वासना तैयार करके डुबा देता है, इसलिये इससे बहुत बचना चाहिये। यह आपसका सम्बन्ध गिरानेवाला है। लेशमात्रका सम्बन्ध भी साधनमें बड़ा विघ्न है। मृत्युसे बढ़कर हानिकारक है। धर्मको डुबानेवाला है। इससे बचनेपर समझना चाहिये कि एक बड़ी आपत्तिसे बच गये, यानि गड्ढेमें गिरनेसे बच गये।

ब्रह्मचर्यका भाव बहुत उत्तम है। जो आदमी मन, वाणी, शरीरसे ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए बेदाग रहता है, उसकी सारी बातें उत्तम हो जाती हैं, उसका साधन बहुत अच्छा हो सकता है। वह केवल ब्रह्मचर्यके बलसे शीघ्र ही भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है। भीष्मपितामहको याद कर लेना चाहिये।

यदि पहले किसीसे बुरा काम बन गया तो उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। भगवान्‌के आगे प्रार्थना करनेसे भगवान् उसे क्षमा कर देते हैं। आगेके लिये मनमें दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि भविष्यमें इस प्रकारका दोष नहीं घटेगा, यदि घट जाय तो मनको धिक्कार देना चाहिये तथा पश्चात्ताप करके उपवास करना चाहिये। पुरुषकी दृष्टि स्त्रीकी ओर जाय तो मनको धिक्कारना चाहिये, रोना चाहिये और परमात्मासे प्रार्थना करनी चाहिये कि अब ऐसे कार्य न करूँ। खूब सावधान रहना चाहिये। करते तो हो सूकर-कूकरका काम और चाहते हो भगवान्‌की प्राप्ति, यह बात कैसे हो सकती है? कहाँ तो परमात्माका दिव्य

स्वरूप और कहाँ विष्ठा-मूत्रकी थैलीसे प्रेम। परमेश्वर खयाल करेंगे तो कहेंगे कि तू मेरा कुछ भी प्रभाव नहीं जानता। कहाँ मल-मूत्ररूप सांसारिक विषयभोग और कहाँ परमात्मसुख।

ये साक्षात् महान् शत्रु हैं—आलस्य, प्रमाद, भोग, पाप।

प्रमाद और पाप तो घोर नरकमें ले जानेवाले हैं ही। आलस्य और भोग पाप कराकर नरकमें ले जानेवाले हैं। भोगमें त्यागनेयोग्य—कंचन, कामिनी, शरीरका आराम, मान, बड़ाई—ये पाँच बातें हैं। ये पाँचों जिसमें नहीं हैं वह सारी दुनियाके लिये वन्दनीय है।

सबसे बढ़कर बलवान् बड़ाई है। किसीमें मानका दोष, किसीमें कामिनीका दोष, किसीमें कंचनका और किसीमें आरामका दोष है। स्त्रीविषयक दोष मालूम नहीं पड़ सकता। जो इन दोषोंसे पार लाँघ जाय वह सारी दुनियाको जीत सकता है।

भोगकी व्याख्या—स्वाद—जिह्वाके भोगमें नहीं फँसना चाहिये। आराम भी भोगका अंग है। रुपया, धन आदि इकट्ठा करना भी भोगकी सामग्री है। शौकीनी—किसी चीजको देखने-सुननेकी इच्छा यह भी विषयभोगका एक अंग है। विलासिता सांसारिक भोगोंका एक मोटा रूप है। ये सभी भोगोंके अंग हैं। इनको पापमें हेतु समझें, ये पाप कर्ममें पटकते हैं। इन सब बातोंको सोचकर सावधान होना चाहिये। एक आदमी भजन-ध्यान भी करता है और उसमें दोष भी हैं। समझना चाहिये उसका भजन-ध्यान मूल्यवान् नहीं है। वह दोषोंके कारण आगे नहीं बढ़ रहा है। हमलोगोंको जो विलम्ब हो रहा है इसमें संसारकी आसक्ति ही कारण है। जैसे वृक्षमें पानी सींचा जाय और वह वृक्ष न बढ़े तो अनुमान कर लेना चाहिये कि उसमें दीमक लगी हुई है। काम, क्रोध, लोभ, निद्रा,

आलस्य—इन सब दीमकोंको निकालना चाहिये। साधन तेज हो तो अन्तःकरण साफ होकर ऊँची स्थिति हो सकती है। बीमारी तो शारीरिक रोग है और काम, क्रोध, लोभ, आलस्य, प्रमाद—ये सब मानसिक रोग हैं। ये मनुष्यको नष्ट कर डालते हैं, इनको नष्ट करनेके लिये भजन, ध्यान, सत्संग करना चाहिये।

जैसे किसीपर फाँसीका मुकदमा लग जाय तो वह उससे छूटनेके लिये कितनी चेष्टा करता है। कितनी खुशामद करता है, हर समय वकीलोंसे कानूनकी पुस्तकें दिखानेकी चेष्टा करता है। ऐसे ही हमको संसारसे मुक्त होनेके लिये चेष्टा करनी चाहिये। हमलोगोंपर भी यमराजका मामला लगा हुआ है। इसकी पैरवी करनी चाहिये। इस शरीरका नाश होना ही फाँसी है। भविष्यमें जन्म न हो। दुःखालय संसारमें दुःखके भाजन न बनें, **'जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्'** ऐसा समझकर इसके लिये खूब खुशामद और पैरवी करनेकी आवश्यकता है। किसीको छः महीनेकी जेल हो जाय, उससे उसकी भूख और नींद उड़ जाती है। वह उससे छूटनेके लिये कितना प्रयत्न करता है। इतना प्रयत्न यदि चौरासी लाख योनियोंसे छूटनेके लिये करे तो सम्भव है कि छूट जाय। ऐसा मौका पाकर कल्याण नहीं हुआ तो हमारा यह मनुष्यजन्म होना लज्जाकी बात है। मनुष्यका जन्म पाकर जो नाना प्रकारके पाप करें, उनसे कुत्ते भी अच्छे हैं। उन्हें अपनी आत्माको धिक्कार देना चाहिये। उनके माता-पिताको भी धिक्कार है कि संसारमें ऐसी संतान पैदा करके कलंक ही लगाया, मनुष्यजीवन पाकर कुत्तोंकी मौत मरना बहुत लज्जाकी बात है। माता-पिता कोई पत्थर पटकते तो वह भी काम तो आता।

खयाल करो—लोग तीर्थोंमें जाते हैं, किसीने चारों धाम कर लिये, किसीने तीन धाम कर लिये, तब भी उनके आचरण और स्वभाव वैसे ही रहते हैं तो लोग उन्हें धिक्कारते हैं। यह ठीक ही है, क्योंकि तीर्थ गये और आचरण ठीक नहीं हुए। आजकल तो लोग केवल भागते ही रहते हैं। पहले तो लोग तीर्थोंमें जाते थे और ८-१० दिन ठहरकर भजन, ध्यान, सत्संग, व्रत, दान करते थे। इसीसे वह पवित्र होते थे। आजकल तो हाय-हाय करके भागते ही रहते हैं। इसलिये उनके आचरण ठीक नहीं होते।

हमलोग उन्हें धिक्कारते हैं। इसी प्रकार यदि हमलोगोंका भी स्वभाव वैसा ही बना रहा तो हमें भी वे लोग ऐसे ही कहेंगे कि इतने वर्षोंसे ये ऋषिकेश सत्संगमें जाते हैं, भजन करते हैं। इन लोगोंको क्या लाभ हुआ, उन लोगोंमें हमारे आचरण देखकर ढिलाई आती है और इससे उन लोगोंको हानि होती है। जो लोग भजन-ध्यानकी ओर आगे बढ़ना चाहते थे, हमें देखकर रुक जाते हैं। वे लोग भजन-ध्यान करके मुक्त हो सकते थे। उनमें हमारे ही कारण रुकावट पड़ रही है। इसलिये ऐसा समझकर अपना सुधार हमें शीघ्र करना चाहिये। शरीर, मन-बुद्धि हमारी है, उन्हें भगवान्‌की ओर लगानेमें क्या कठिनता है।

अपने एक-एक क्षणका हिसाब रखना चाहिये। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। कौड़ियोंके बदलेमें ऐसे अमूल्य जीवनको खोना कैसी मूर्खता है? मनुष्यजीवन पाकर यदि शरीरका निर्वाह मात्र ही किया तो पशु-पक्षी और मनुष्योंमें क्या अन्तर है। इसलिये भोगोंको लात मारकर ऋषि-मुनि पहले जिस काममें लगे थे उसी काममें लगना चाहिये। यह कार्य तत्पर होनेसे ही हो सकता है।

अपनेको ईश्वरका चपरासी मानना चाहिये। हमलोग ईश्वरके

चपरासी बन जायँ तो शीघ्र ही हमारा कल्याण हो सकता है। ईश्वरका चपरासी कौन है? भक्त ही भगवान्‌का चपरासी है। जो थोड़ी भी भगवान्‌की भक्ति करता है वह भी भगवान्‌का चपरासी है। इसलिये हरेकको अपनेको भगवान्‌का चपरासी समझना चाहिये। हम नाममात्रके तो ईश्वरके चपरासी हो ही गये, इसलिये हम काम-क्रोधादिको ईश्वरकी राजधानीमें रहकर शीघ्र ही मार सकते हैं। सरकारका दस-पन्द्रह रुपये मासिकका चपरासी भी करोड़पतिको हथकड़ी-बेड़ी डालकर ला सकता है। जब हम ईश्वरके घरके नाममात्रके सिपाही हो गये, तब हम इन काम, क्रोधादिको जानसे मार सकते हैं। हमारी इतनी शक्ति है फिर भी हम इतना डरते हैं। इनको हथकड़ी डालकर वशमें कर लेना चाहिये। ईश्वरका अपने सिरपर हाथ मानकर इन काम-क्रोधादिपर विजय करनी चाहिये। भगवान्‌के राज्यमें रहकर यदि हम इन्हें नहीं मार सकेंगे तो भगवान् कहेंगे कि यह हमारे राज्यमें सिपाही रहनेयोग्य भी नहीं है। इसलिये वीरताके साथ इनको मार गिराना चाहिये।

संसारमें महात्माका सहारा मिलनेपर वह चाहे सो काम कर सकता है। महान् बन सकता है। फिर परमेश्वरका सहारा पाकर डरनेवाला तो भगवान्‌की चपरासके कलंक ही लगाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह हमें जूता मारते हैं तो हम भगवान्‌के राज्यमें रहते हुए वह जूता भगवान्‌को ही लगाते हैं, क्योंकि हम भगवान्‌के चपरासी हैं। यदि तुम काम, क्रोध आदिसे पिट जाओ तो भगवान्‌को सूचना दे दो, भगवान् सेना भेजकर इन्हें नष्ट कर देंगे। परमात्मा राजा हैं, हमलोग उनके चपरासी हैं। हमलोग चपरासी होते हुए काम-क्रोधादिसे पिट जाते हैं तो कितनी

लज्जाकी बात है। जैसे वाइसरायको यह मालूम हो गया कि अमुक थानेदार चोर-डाकुओंद्वारा पीटा गया तो क्या वह सेना भेजकर चोर-डाकुओंका दमन नहीं करेगा?

परमात्माकी दया मानकर उसके बलपर काम-क्रोधादि शत्रुओंको पराजित करना चाहिये एवं परमपदका सरल मार्ग तय कर लेना चाहिये। भगवान्‌का भजन, ध्यान, सत्संग—तीनों प्रत्यक्ष आनन्ददायक हैं।

भगवान्‌के प्रभाव, रहस्य, गुणको स्मरणकर चलते, उठते, बैठते, उनकी दया और प्रेमको याद करके मुग्ध होवे। भगवान्‌के प्रेमको याद कर-करके मुग्ध होना चाहिये। अपना मार्ग तय हो सकता है ऐसा मानकर मुग्ध होना चाहिये।

परमेश्वर मेरेपर बहुत प्रसन्न हैं। प्रभु थोड़ा मौका मिलते ही मिलनेको तैयार हैं। मैं आनन्दके निराकार स्वरूपमें ही चल रहा हूँ। आनन्दमें मस्त होकर विचरे।

भगवान्‌के नाम उच्चारणके साथ ही उनकी माधुरी-मूर्तिका लक्ष्य करे। भगवान्‌को अपने नेत्रोंके सामनेसे बिसारे नहीं। उनके प्रभाव, गुण, दयाको देखकर मुग्ध होता रहे। शोक, चिन्ता, भय पास न आने दे। हर समय आनन्दमें मग्न रहे। इसमें कठिनता क्या है? यह मनको समझावें। भजन, ध्यान, सत्संग—ये बड़े सुगम हैं। बुरी आदत छुड़ाकर उस परमात्मामें मग्न होकर माधुरी-मूर्तिको देख-देखकर जीवन बितावें। नहीं तो जन्म-जन्मान्तरतक पछताना पड़ेगा। इसलिये एकदम साधनमें संलग्न होकर भगवान्‌का साक्षात्कार कर मनुष्यजीवनको सफल बना लेना चाहिये।

सर्वोत्तम भाव—सभीका कल्याण चाहना

कल्याण श्रद्धासे होता है। रामकिशनजी बरेलीसे बड़े उत्साहसे आये और उनका शरीर शान्त हो गया। यह तो साधारण श्रद्धाकी बात है। कन्हैयालालजीका यहाँ शरीर शान्त हुआ। यह साधारण श्रद्धाकी बात है। अधिक श्रद्धा हो तो और विशेष बात हो। जैसे मरनेवालेका कल्याण तो हो ही जाय, उसके पास रहनेवालोंका भी कल्याण हो सकता है। यह विशेष बात है। परमात्माकी प्राप्ति हुई क्या? यह बात कन्हैयालालजीसे पूछी गयी तब उन्होंने कहा कि मुझे भगवान् दीख रहे हैं, पर हमलोगोंको तो नहीं दीखे। हमलोगोंको भी दीखनेकी गुंजाइश थी। इसलिये यह बात नहीं कही जा सकती कि इससे बढ़कर बात नहीं है।

अपनेको इतनी श्रद्धा बढ़ानी चाहिये कि मरते समय भगवान्‌के साकार दर्शन हो जायँ। इससे भी और विशेष श्रद्धा हो तो विशेष बात हो। भगवान् एकदम सबके सामने प्रकट होकर सबको दर्शन दे दें। चाहे दो मिनट ही दें। अपने पास इससे परेकी बातोंको नापनेके लिये गज नहीं है। इससे उत्तम भी तीसरी बात है कि लाखों व्यक्ति परमात्माकी ओर लग जायँ।

अभी तो आपलोग यही बात कहते हैं कि रामकिशनजी और कन्हैयालालजी-सरीखी हमारी मृत्यु हो तथा प्रभु दर्शन दें तो सबको दें। इससे भी बढ़कर यह भाव है कि मैं तो पासमें रहनेवाले सबको दर्शन कराकर ही जाऊँगा। यह उससे ऊँची बात

है। राजा हरिश्चन्द्रने भगवान्‌से प्रार्थना की और कहा कि मेरी सारी नगरीका उद्धार कर दें। भगवान्‌ने उनकी सारी नगरीका उद्धार कर दिया तथा सारी नगरी वैकुण्ठमें चली गयी।

यह सुनी हुई बात है कि प्रह्लादने भगवान्‌से सारी दुनियाके उद्धारके लिये वरदान माँगा। संसारमें कोई बात असम्भव माननी ही नहीं चाहिये। सभी भगवान्‌के अंश हैं। जो बहुत भारी श्रद्धा, प्रेम, भक्ति करे वह कारक पुरुषकी तरह काम कर सकता है। मनुष्य यदि उन्नति करना चाहे तो वह लाखों, करोड़ों मनुष्योंका उद्धार कर सकता है। भगवान्‌ने भक्त प्रह्लादको यह वरदान दिया था कि सारी दुनियाका उद्धार तो नहीं हो सकता पर जो तुम्हारे भाषणको सुनेगा और तुम्हारा संग करेगा उसका उद्धार हो जायगा, परन्तु इसमें घूमना बहुत पड़ेगा।

संसारमें ऐसे पुरुष होते हैं जिनमें श्रद्धा-विश्वास होते ही कल्याण हो जाता है। ऐसे आदमी बहुत हुए हैं पर हमें मालूम नहीं है। जिनका श्रद्धासे दर्शन करते ही उद्धार हो जाय ऐसे पुरुषोंके होनेसे संसारका कुछ काम चल सकता है। जैसे चैतन्यमहाप्रभुने जगाई-मधाईका उद्धार किया। वे महा दुराचारी और पापी थे। चैतन्यमहाप्रभु जब कीर्तन करते थे, तब नास्तिक भी जिनकी भगवान्‌में श्रद्धा और भक्ति नहीं थी नाचने लग जाते। जो मनुष्य उस रास्तेसे निकलता, वह भी पागलकी तरह बन जाता। हमें भी ऐसा बननेकी चेष्टा करनी चाहिये। मनुष्य उन्नति करते-करते ऐसा बन तो सकता है, यह विश्वास करना चाहिये।

यह बात माननी चाहिये कि आजतक जितने महान् पुरुष हुए हैं, उनसे भी ऊँची श्रेणीका मैं बन सकता हूँ।

वेदान्त तो कहता है कि मनुष्य ब्रह्म बन सकता है, परन्तु भगवान् तो भगवान् ही हैं। हमलोग खूब ऊँचे बन सकते हैं।

दोनों मार्ग खुले हैं। चाहे ऊँचे भक्त बनो चाहे भगवान् बनो। अन्तर इतना है कि ज्ञानमें विज्ञानानन्दघन ज्ञानमय आनन्दस्वरूप बन जाता है और भक्तिके मार्गमें साक्षात् पूर्ण ब्रह्म जो ज्ञानके पुंज हैं उनके आनन्दका भोक्ता हो जाता है।

ज्ञानमार्गमें तो भगवान्का स्वरूप बन जाय यानि भगवान्का स्वरूप बनना हो तो ज्ञानमार्ग खुला है और प्रभुके पास रहकर उनको देख-देखकर मुग्ध होना हो तो भक्तिका मार्ग खुला है। आनन्दस्वरूप और आनन्दका भोक्ता। वह आनन्द ऐसा है कि उससे सारे ब्रह्माण्डोंका पालन होता है, फिर भी वह कम नहीं होता।

एक आदमी सारी दुनियाको सदावर्त बाँट रहा है, पर क्या वह भूखा रह सकता है? यह बात समझमें नहीं आती, यदि कोई सारे ब्रह्माण्डको आनन्द देता है तो ऐसा नहीं हो सकता कि वह आनन्दमय नहीं है।

वहाँका अनुभव इससे विलक्षण है। यहाँ ज्ञाता-ज्ञेय दो बात है, वहाँ ज्ञाता-ज्ञेय एक ही है। वहाँ वाणी और मनकी पहुँच नहीं है। मनसे मनन करके ही वाणी बता सकती है। यदि बतायेगी तो यही कहेगी कि वह विलक्षण है, यह तो जाननेसे ही मालूम हो सकता है। दृश्य तो सदा जड़ ही होता है और वह चिन्मय स्वरूप है, अनुभवरूप है। ब्रह्म सत्य है, ज्ञान है, अनन्त है। काल व देशके रूपमें जिसका अन्त नहीं है। आकाशकी तो सीमा है पर परमात्माकी सीमा नहीं है, उसका कभी अन्त नहीं आता।

भक्तिके मार्गसे जाकर अलग अनुभव करता है, पर ज्ञानके मार्गसे तो स्वयं अनुभवस्वरूप हो जाता है। वह परमात्मा सुखमय है, सत्य है, नित्य है। वहाँ देश और कालका भी अत्यन्त अभाव

है। जो परमात्माको प्राप्त होता है वही जानता है। ये सारी बातें यहाँ समझानेके लिये हैं। वह पुरुष वहाँकी अलौकिकता कैसे बतलायेगा। आखिरमें वह कहेगा कि इससे भी वह विलक्षण है।

परमात्माको प्राप्त होनेपर उसका हृदय मुर्देकी तरह विचलित नहीं होता। जैसे मुर्देमें मान-अपमान आदि किसी भी तरहका विकार नहीं है। वह लोगोंकी दृष्टिमें तो जीवित है, परन्तु वह जीवन्मुक्त है। मान-अपमान, शीत-उष्ण, हर्ष-शोकको समता हरेकमें देखनेमें नहीं आती। उनका देखना और समझना आश्चर्यवत् ही है। उस स्थितिको वाणीसे बताया नहीं जा सकता।

जिनके दर्शन, स्पर्शसे ही कल्याण हो जाय, उस पुरुषके आचरण तो महात्मा पुरुषों जैसे ही होते हैं। जिनके द्वारा एकका उद्धार हो सकता है, उनके द्वारा लाखोंका कल्याण भी हो सकता है। जिनकी श्रद्धा और विश्वास है उनका उद्धार होनेमें कोई बड़ी बात नहीं। जिनके श्रद्धा और विश्वास नहीं, उनका भी उद्धार होना कोई बड़ी बात नहीं है। पापीसे पापी मनुष्यका भी भगवान्‌की दयासे उद्धार हो जाता है। यह तो भगवान्‌की विशेष दया है कि भगवान्‌के हाथसे जिनकी मृत्यु होगी, उसको भगवान्‌का स्मरण होगा ही, यदि स्मरण न भी हो तो भी कल्याण होगा, यह भगवान्‌की विशेष आज्ञा है।

उत्तंककी भगवान्‌पर श्रद्धा नहीं थी, तब भी भगवान्‌ने उसे अपना प्रभाव दिखाया। कहा कि तेरी गुरुसेवा देखकर मुझे दया आती है। तू मेरे प्रभावको नहीं जानता। जानता तो मुझे शाप देनेको तैयार नहीं होता। भगवान्‌ने दया करके उसे अपना विश्वरूप दिखाया। भगवान्‌में उसकी श्रद्धा न होते हुए भी उसका कल्याण किया।

भगवान् दर्शन देनेपर उसका कल्याण किये बिना छोड़ते ही नहीं। महात्माके संगको लोग छोड़ दें तो महात्मा इसमें समर्थ नहीं हैं कि उन्हें पकड़ लें। पर भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं। भगवान्ने उत्तंकको गुरुसेवाका फल दिया। उत्तंक, उपमन्यु, साकल्य, सत्यकाम आदिने गुरुकी खूब सेवा की थी।

उपाय तो एक ही है कि मनमें यही प्रबल इच्छा करे कि मैं चाहे नरकमें रहूँ, पर सारी दुनियाका कल्याण हो जाय। ऐसी कृपा अभीतक किसीपर नहीं हुई। अपना कल्याण सबके पीछे चाहे। भगवान् पूछें कि वरदान माँग तो यही वरदान माँगे कि सबका उद्धार हो जाय, अन्यथा मैं नरकमें रहूँ और जो नरकमें आये उसका ही उद्धार करता रहूँ। अपना माँगनेका काम है, देना न देना उनकी इच्छा। नरक सदाके लिये ही माँगे, दुनियामें सबसे खराब जगह लोग नरकको ही मानते हैं, वही अपने लिये माँगे।

काशीमें शिवजी मुक्ति देते हैं। वह नरक तो काशीसे भी बढ़कर बन जाय। संसारमें जितने दयालु हुए हैं वह तो उन सबसे बढ़कर दयालु है।

बिना श्रद्धा ही दर्शन, उपदर्शनसे लोगोंका उद्धार हो जाय, ऐसा कैसे बनूँ?

जिसको भगवान् यह वरदान दे दें कि जहाँ दुःखी बहुत हैं वहाँ जाकर रह। जिनका भाव ऐसा है वही पुरुष वैसा बनने लायक हो सकता है। वहाँ कमजोरका काम नहीं है। उसीको वरदान मिल सकता है। सगुण साकारके दर्शन करनेवालोंके ही ये भाव हो सकते हैं।

अपने तो सब लोग यही बात खयाल रखें कि यदि किसीको

भगवान् मिलें तो यह माँगे कि सबका उद्धार कर दें। यह इच्छा सबसे उत्तम है। मनुष्य जो भी क्रिया करे वह किसीके अर्पण तो करता ही है। कोई तो फल-आसक्ति त्यागकर कर्म करता है, कोई कृष्णार्पण कर्म करता है। कोई प्रकृतिके अर्पण करता है कोई **गुणा गुणेषु वर्तन्तः** इस भावसे कर्म करता है। हमलोग तो कर्मका यदि कोई फल होता हो तो यही माँगें कि इससे सारी दुनियाका कल्याण हो जाय। इस त्यागका जो फल हो तो उसका फल भी यही माँगें कि सारी दुनियाका कल्याण हो जाय। दुनियाका कल्याण माँगनेवालेका यह भाव नहीं होना चाहिये कि मेरा भी कल्याण हो जाय।

भगवान्ने प्रह्लादसे कहा वरदान माँगो, तब उसने कहा कि सारी दुनियाका कल्याण कर दें। भगवान्ने कहा—इनके पापोंको कौन भोगेगा। प्रह्लादने कहा मैं भोगूँगा। भगवान्ने कहा ऐसा तो नहीं हो सकता, पर जिसका तुम्हारेसे भाषण, दर्शन, स्पर्श आदि हो जायगा, उन सबका कल्याण हो जायगा। ऐसा वरदान माँगना भगवान्के पास रहनेसे बढ़कर है। अपना भले ही वियोग रहे, परन्तु सब जीव भगवान्के पास पहुँच जायँ।

भगवान्की दयाका सहारा लेकर यहाँ हमलोग जितने आदमी बैठे हैं, इनमें नीचे-से-नीचा जीव भी इसी जन्ममें ऊँचे-से-ऊँचा बन सकता है। भगवान्की दयाके सहारे प्रयत्न करनेपर पापी-से-पापी भी जन्मके थोड़े ही कालमें ऊँचे-से-ऊँचा हो सकता है, परमात्माका आश्रय लेकर प्रयत्नशील हो, लगन लगावे।

लगन लगन सब कोइ कहे लगन कहावे सोय।
नारायण जा लगनमें तन मन दीजे खोय॥

सबसे बढ़कर बनना पारससे भी मूल्यवान् है। यदि कोई

कहे कि इस पहाड़पर उस जगह पारस पड़ा है। जो पहले पहुँचेगा उसे ही मिलेगा तो सब बड़े उत्साहसे भागेंगे। वैसा उत्साह हो तो जो आदमी सबसे पीछे है वह भी सबसे आगे पहुँच सकता है। उससे भी कई गुना अधिक उत्साह भगवत्प्राप्तिके लिये करना चाहिये। परम श्रद्धासे भगवत्प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती है। श्रद्धासे भी विलम्ब हो जाता है, फिर जैसा होना होगा वैसा अपने-आप ही हो जायगा।

यदि स्त्री अपने पतिको परमात्मा मान ले, परमात्मा माननेपर स्त्रीकी स्थिति वैसी हो जायगी जैसी परमात्मप्राप्त व्यक्तिकी हो जाती है।

ज्ञानमार्गमें तो एक विज्ञानानन्दघनके सिवाय और कोई है ही नहीं। वहाँ किसका उद्धार, वहाँ तो अपने कल्याणसे ही सबका कल्याण है। प्रार्थना तो भक्तिमार्गवाले कर सकते हैं।

दुनियामें बहुत-से ज्ञानमार्गसे चलनेवाले भक्तिकी तरफसे नाक सिकोड़ते हैं और भक्तिमार्गवाले ज्ञानकी तरफसे। ऐसा जो करते हैं वे एक-दूसरेके तत्त्वको नहीं समझते।

उसकी दूसरी मौज है और उसकी दूसरी मौज है। दोनों मार्ग अलग-अलग हैं—दोनों ही ठीक हैं।

ज्ञानमार्गमें स्वयं परमात्माका स्वरूप बन जाता है। वह आनन्दमय सारे संसारको आनन्द बाँटता रहे तो भी वह आनन्द वैसा-का-वैसा ही रहता है। भगवान् जैसे सबका पालन-पोषण कर खुद आनन्दमें रहते हैं। वह पुरुष भगवद्-रूप हो जाता है। सारी दुनिया उसकी उपासना करे, वह उपास्य है।

इस प्रकार भक्तिके तत्त्वको नहीं समझनेवाले कहते हैं कि यह तो विषयासक्ति है, इससे दूर रहो। जैसे गोपियोंका भगवान्से

विशुद्ध प्रेम था। जिस आनन्दमें गोपियाँ मुग्ध थीं, उस प्रेमका आस्वादन, उस आनन्दके तत्त्वको ज्ञानमार्गवाले छू भी नहीं सकते। उन गोपियोंके आनन्दको देखकर भगवान् मुग्ध हो जाते हैं। सारी दुनियाको तो भगवान् मुग्ध करते हैं और राधिकाजी भगवान्को मुग्ध करती हैं। राधिकाजी भगवान्की प्रसन्नतामें प्रसन्न और भगवान् राधिकाजीकी प्रसन्नता देखकर प्रसन्न होते हैं। सारी मुक्तियाँ भक्तकी चरण-धूलिमें रहती हैं। नित्य नयी मुग्धता रहती है। मुक्ति तो उनके चरणकी धूलिमें लोटती है। मुक्ति तो उन भक्तोंकी चरणरजसे ही मिल जाती है। इतनी ऊँची स्थितिको ज्ञानमार्गवाले जान ही नहीं सकते।

दोनों ही इसी तरह भूलमें हैं। किसी मार्गकी भी निंदा करनी भगवान्की निन्दा करनी है। परमात्मप्राप्त पुरुष तो किसीकी भी निन्दा नहीं कर सकता। जो भगवान्के किसी भी मार्गकी निंदा करे, वह परमात्मप्राप्त पुरुष नहीं है। परमात्माको प्राप्त पुरुष तो प्राणिमात्रसे घृणा नहीं करता। जो इन मार्गोंमें घृणा करे वह तो द्वेषी है। परमात्मप्राप्त पुरुष तो मुसलमान, ईसाईके धर्मसे भी घृणा नहीं करता। जो इनसे भी घृणा करता है वह भगवत्प्राप्त पुरुष नहीं है। जो पुरुष सब भूतोंको अपनी आत्मामें और सब भूतोंमें अपनी आत्माको देखता है, वह किसीसे भी घृणा नहीं कर सकता—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

(ईशावास्योपनिषद् ६)

शास्त्रकी मर्यादा रखनेके लिये जो स्पर्शके योग्य नहीं है उसे स्पर्श मत करो, परंतु उससे घृणा मत करो। आपत्तिकालमें यह

नियम लागू नहीं है, बीमार-अवस्थामें अस्पृश्यकी सेवा करना भी परम धर्म है। इसके पश्चात् शास्त्रकी मर्यादानुसार स्नान कर ले। शास्त्रकी मर्यादा क्रियामें रहनी चाहिये। हृदयसे सबको साष्टांग प्रणाम करना चाहिये, यही भक्तिका मार्ग है।

ज्ञानमार्गसे परमेश्वरकी प्राप्ति होनेपर संसार स्वप्नवत् हो जाता है और सभी उसकी आत्मा बन जाते हैं तो घृणा किससे करे। शरीरमें जितनी गंदी चीजें हैं, उतनी गंदी चीजें संसारमें कहीं नहीं मिलेंगी।

भक्तिके मार्गमें साधकका यह भाव रहता है— ***मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।*** फिर किससे घृणा करे।

ज्ञानके मार्गमें अपनी आत्मा ही सबकी आत्मा है तो किससे घृणा करे।

साधककी बुद्धिमें भ्रम न हो इसलिये सिद्धको शास्त्रके अनुसार चलना चाहिये।

अन्तिम चिन्तनके अनुसार योनिकी प्राप्ति

जीव इस शरीरसे निकलकर दूसरे शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। पहले उसका सूक्ष्म-शरीर तैयार हो जाता है। बच्चा पेटसे बाहर आता है तो जीवसहित ही आता है। जीव तो प्रारम्भमें ही प्रवेश कर जाता है। कोई-कोई कहते हैं कि जीव गर्भमें छः महीनेके बाद पड़ता है, यह बात ठीक नहीं है। जीव यदि गर्भमें न पड़े तो गर्भकी वृद्धि ही नहीं हो सकती। पाँच महीनेके बच्चेको भी पेटसे निकाला जाता है। इससे यह पता चलता है कि जीव प्रारम्भसे ही है। एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जो निकल कर जाता है वह सूक्ष्म-शरीर है।

मनुष्यके तीन शरीर हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। हमलोग स्वप्नमें भी अपना शरीर मनुष्यका ही देखते हैं। सुषुप्ति अवस्थामें भी यही शरीर रहता है। पहले कारण-शरीर बनता है, फिर सूक्ष्म-शरीर बनता है, फिर स्थूल-शरीर बनता है। मनुष्यका स्वभाव ही उसका स्वरूप है।

मनुष्यके स्वभावके अनुसार ही भविष्यमें उसका शरीर बनेगा। स्वभाव कर्मोंसे बनता है। स्वभाव कारणस्वरूप है। हिंसा करनेवाला मरनेपर हिंसक पशु बनता है और दान देनेवाला बड़ा दयालु बनेगा। उसके स्वभावके अनुसार ही सूक्ष्म-शरीर बनता जाता है। हमलोगोंका स्वभाव आचरणके अनुसार ही होता जाता है। हमलोग जो कर्म करते हैं उसके दो विभाग हैं। एक वासना और दूसरा फल।

वासनाके समुदायके अनुसार ही स्वभाव बनता है। चोरी करनेपर उसके संस्कार, क्रिया या भाव हृदयमें अंकित हो जाते हैं। उस चोरीकी क्रियाकी दो चीज बनती है। एक तो फल और एक भावना। जैसा कार्य होता है वैसा फल मिलता है। फलसे आयु और वासना बनती है। वासनाके समुदायसे स्वभाव, उससे कारण स्वरूप (शरीर) और उसके अनुसार योनि मिलती है।

मरते समय जो भावना बलवान् होती है, उसकी स्मृति होते ही सूक्ष्म-शरीर उसी प्रकारका बन जाता है। अंतकालमें उसकी पूर्व स्फुरणासे ही शरीर बनता है।

जिस क्षण प्राण निकलते हैं, उस समय सूक्ष्म-शरीरका चित्र उतरता है। जो भाव उसके हृदयमें आया, जैसे कुत्तेका भाव आया तो उसका वह सूक्ष्म-शरीर कुत्तेका हो गया। अब वह कुत्तेकी तरह बना हुआ शरीरसे निकलकर वायुमण्डलमें घूमने लगा। अब उसका जिससे सम्बन्ध होता है वह उसी कुत्तेके खाने-पीनेके पदार्थके द्वारा उसके पेटमें चला जाता है और वीर्यरूप होकर कुतियाके गर्भमें आ जाता है। वीर्य और रज मिलकर कुत्तेकी स्थूल आकृति बनने लगती है। कुछ महीने बाद पूर्ण स्थूल-शरीर बनकर बाहर आता है।

इस तरहसे लोग कर्मानुसार दूसरी योनिमें जाते हैं। सत्, रज, तम—ये तीन गुण ही उसके हेतु होते हैं। गुण कर्मानुसार होता है और कर्मसे स्वभाव बनता है। स्वभावसे ही सत्-असत् योनि बनती है।

केवल सात्त्विक एवं सात्त्विक राजसी मिले हुए दोनों ऊपरके लोकोंको जाते हैं। सात्त्विक-राजसी बुद्धिवाला स्वर्गमें जाता है, कर्म पूरे होनेपर फिर वापस आता है।

इसका जाना इस प्रकार होता है। अमृत देवताओंका खाद्य पदार्थ है। सात्त्विक मिली हुई राजसी बुद्धिवाला चन्द्रमाके द्वारा अमृत बनकर देवलोकमें जाता है और भोग भोगता है। भोग समाप्त होनेपर वह जीव पृथ्वीकी ओर ढकेल दिया जाता है।

पृथ्वीसे पहले ऊपरकी ओर अन्तरिक्षलोक है। उसमें करोड़ों जीव वायुके भीतर रहते हैं। नक्षत्र और पृथ्वीके बीचमें आकाशमें रहनेवाले जीव रहते हैं। वहाँसे चन्द्रमाकी रश्मियोंद्वारा बिजलीके लोकमें आकर फिर बरसाया जाता है और भोज्य पदार्थोंके वृक्ष व पौधोंमें आ जाता है, फिर उसे मनुष्य खा जाते हैं उससे मनुष्य पैदा होता है।

देवलोकसे आये हुए अधिकांश जीव मनुष्य ही बनते हैं, यदि कर्म कुछ खराब हों तो अपने कर्मानुसार अन्य योनिमें जन्म लेता है।

सकामी लोग कभी स्वर्गमें और कभी मनुष्यलोकमें आते-जाते रहते हैं। निष्कामभावसे काम करनेवाला सूर्यकी रश्मियोंसे आकाशमें जाकर परमधामको जाता है। वह वापस नहीं आता। सकामीकी मध्यगति और निष्कामीकी ऊर्ध्वगति होती है।

तीसरी है अधोगति—इसकी दो जगहें हैं। मनुष्य-शरीर पाकर उचित कार्य नहीं किया तो योनिविशेष नरक या स्थानविशेष नरक मिलता है।

जहाँ ये नरक हैं वहाँ बड़ा अन्धकार है। वहाँ अग्निका ही प्रकाश है। ये नरक पृथ्वीके अन्दर हैं। पृथ्वीके अन्दर भी प्रजा बसती है। यह युक्ति और शास्त्र दोनों तरहसे सिद्ध होता है। अर्जुनको उठाकर वह राक्षसी गंगाजीके द्वारा पातालमें ले गयी। पृथ्वीके गोलेमें पारतक छेद नहीं निकाल सकते, क्योंकि उसमें पोल है।

पृथ्वीके अन्दर अग्निका प्रकाश है। पाँच-सात मीलके बाद अग्नि निकल आती है। उसके बाद जीवोंके लिये नरक बने हैं। उन्हें नरकमें बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। आसुरी योनिवालोंको यह नरक दिया जाता है।

जो मुक्त हो जाता है वह ब्रह्ममें मिल जाता है और परम-धाममें जाता है। पृथ्वीके ऊपर अन्तरिक्ष और उसके ऊपर स्वर्ग है। स्वर्गके पाँच भेद हैं—स्व-इन्द्रलोक, मह-देवलोक, जन-ब्रह्मलोक, तप-ब्रह्मलोक, सत्य-वैकुण्ठलोक, इसे साकेत और गोलोक भी कहते हैं। उसके ऊपर कोई स्थान नहीं है। इस सात विभागमें सारा ब्रह्माण्ड आ जाता है।

जो ज्ञानके निर्गुण ब्रह्मको पाता है, वह ब्रह्ममें विलीन हो जाता है, वह वापस नहीं आता। सत्यलोकसे भी जीव वापस नहीं आता। ब्रह्मलोकसे जीव वापस आते हैं। मुक्तिके दो मार्ग हैं—कर्म और श्रद्धा। गति तीन हैं—ऊर्ध्व, मध्य और अधोगति। अधोगतिसे नरकमें बहुत यातना दी जाती है।

कर्मके अनुसार स्वभाव, स्वभावके अनुसार शरीर बनता है। मरते समय स्वभावके अनुसार सूक्ष्म शरीर बन जाता है। कुत्तेका, गधेका कैसा भी हो। जैसे चित्र उतारते समय हिल जाय या आँख मींच ले तो चित्र खराब हो जाता है, उसी प्रकार मरते समय जैसा ध्यान होता है, स्वभाव होता है (कारण शरीर), उसी प्रकारका चित्र उतरेगा, इसीलिये अन्त समयमें सावधान रहना चाहिये। उस समय सावधान रहनेके लिये ही साधन व अभ्यास कराया जाता है, यदि बिना साधन व अभ्यासके मरते समय भगवत्स्मरण हो जाय तो प्रभुकी दया ही है। उसका फिर जन्म नहीं होता। वह सत्यलोकको जाता है। परमगतिको प्राप्त हो जाता है।

अन्त समयमें किसी-न-किसी चीजका स्मरण होता ही है। यदि जड़ वस्तुका चिन्तन हो तो वह जड़ चीजमें रहनेवाला जीव ही बनता है। ये सारी बातें शास्त्रोंके अनुसार ही कही गयी हैं।

सब नरक अलग-अलग तरहके बने हुए हैं। कुम्भीपाक-नरकका आकार घड़ेके समान है। जैसे घड़ेमें कुछ पकाया जाता है, उसी प्रकार जीवको कुम्भीपाक नरकमें खौलते हुए तेलमें पकाया जाता है। वह मरता नहीं है। असिपत्रवन नरकमें तलवारके समान पत्ते रहते हैं, उसमें वर्षोंतक घसीटते हैं, वह मरता भी नहीं है, कष्ट ही उठाता है। उसको दूसरा शरीर देकर कष्ट देते हैं। महारौरव नरकमें कष्ट-ही-कष्ट दिया जाता है। रौरव नरकमें रोता है और कष्ट पाता है।

विभिन्न योनियोंमें उतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता। कीटयोनिसे सौगुना सुख पशुयोनिमें है, पशुयोनिसे सौगुना सुख पक्षी-योनिमें है एवं पक्षीयोनिसे सौगुना सुख मनुष्ययोनिमें है।

काम-क्रोध-लोभ नरकके द्वार हैं। इनके द्वारा दोनों तरहके नरक मिलते हैं—स्थानविशेष और योनिविशेष नरक।

नक्षत्रसे लेकर पृथ्वीतक अन्तरिक्षलोक है। **भूः, भुवः, स्वः** स्वःके पाँच हिस्से हैं।

सब नष्ट होनेपर शक्ति और शक्तिमान् दो वस्तु रहती है। अन्य सारे जीव, तेज, आकाश सभी परमात्मामें विलीन हो जाते हैं। तन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) कारणमें विलीन हो जाते हैं। जीवोंका समुदाय ब्रह्मके शरीरमें रहता है। जैसे समुद्रमें गंगाजलके घड़े भरकर रखे हुए हों, ऐसे रखे रहते हैं। सारे जीव ब्रह्ममें प्रकृतिको लेकर रहते हैं। फिर पीछे फैल जाते हैं।

पहले अहंकारकी उत्पत्ति, उसके बाद पाँच तन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, इस तरहसे ये पन्द्रह उत्पन्न होते हैं।

एक मूल प्रकृति है। वह किसीकी विकृति नहीं है। महत्तत्त्व, अहंकार और पंचतन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)—ये सात प्रकृति-विकृति हैं। अर्थात् ये सातों—अहंकार, मन, पंच सूक्ष्म महाभूत तथा इन्द्रियोंके विषयोंके कारण होनेसे प्रकृति भी हैं और मूल प्रकृतिके कार्य होनेसे विकृति भी हैं। पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और मन—ये ग्यारह इन्द्रिय और पाँच इन्द्रियोंके विषय—ये सोलह केवल विकृति (विकार) हैं। वे किसीकी प्रकृति अर्थात् कारण नहीं हैं।

योगदर्शनमें पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, एक मन और पंच स्थूलभूतको विशेष कहा गया है।

अहंकार और पंचतन्मात्राओंको अविशेष कहा गया है।

महत्तत्त्वको लिंगमात्र कहा गया है और मूल प्रकृतिको अलिंग कहा गया है।

पहले आकाशतत्त्व होता है। आकाशतत्त्वसे पहले अव्याकृत माया, उसके बाद आकाशतत्त्व, फिर वायुतत्त्व फिर अग्नितत्त्व फिर जलतत्त्व, फिर पृथ्वीतत्त्व होता है।

प्रलयका समय समाप्त हो जानेपर सब जीवोंकी वृद्धि होकर चेतन आकार अनेक रूप हो जाते हैं। वहाँ परमेश्वर पिता हैं और प्रकृति माता है। मातासे शरीर और पितासे चेतन आकार मिलता है। जिस तरह रज और वीर्यसे जीव बनता है।

तप:लोकतकका प्रलय हो जाता है। ब्रह्मलोक भी सूक्ष्म-शरीरसे हो जाता है। सारे जीवोंके पाप-पुण्य बीजरूपमें लय हो जाते हैं और संस्कारके रूपमें हो जाते हैं। सारे जीव परतन्त्र हैं। स्वतन्त्र फल नहीं भोग सकते। यदि कोई कहे कि जीव कर्मानुसार स्वतः ही दु:ख-सुख भोग लेते हैं यह बात नहीं है।

जैसे यदि कोई मरा तो वह कुत्तेकी योनिमें नहीं जाना चाहेगा। इसलिये ईश्वरके कार्यकर्ता (देवता) ही यह कार्य करते हैं। स्वतन्त्र रूपसे जीव सुख-दुःख नहीं उठा सकते। जैसे संसारमें कोई चोरी करता है वह स्वयं जेलमें नहीं जाता है। उसके लिये राज्य कर्मचारी नियत हैं। वे उसे उसके कर्म (अपराध)-के अनुसार सजा देते हैं। जैसे मोटरमें भावना करके बैठ जाओ कि वहाँ जाना है तो मोटर नहीं जा सकती। ले जानेवाला तो चेतन है। उसी तरह यह परमात्मा है।

सांख्य और जैन सिद्धान्तोंमें बड़ा अन्तर है। जीव अनेक हैं, पुरुष चेतन है, यही सिद्धान्त मिलता है, बाकी सबमें मतभेद है।

वस्तुके रूपमें तो संकल्पमात्र ही है। जैसे एक पापी आदमी है, उसका कारण स्वरूप पापी नहीं बनता, अपितु मरते समय ही एकदम बन जाता है। जैसे साँचेमें ढालनेके पहले सारी सामग्री तैयार रहती है और साँचा भी तैयार रहता है, उसी समय दूसरी वस्तुकी आवश्यकता होनेपर दूसरा साँचा रख दिया जाय तो दूसरी वस्तु उसी वस्तुसे तैयार हो सकती है।

भगवान् कहते हैं कि सत्त्वगुणमें स्थित हुआ पुरुष मुझको प्राप्त होता है, किन्तु मरते समय किसी कारणवश उसकी बुद्धि रजोगुणमें आ जाय तो वह स्वर्गमें जायगा और रजोगुणवाला मरते समय सत्त्वगुणमें आ जाय तो वह मुझको प्राप्त होगा।

भगवान्‌में प्रेम न करना नीचताकी हद

प्रेमका विषय तो बहुत ही उत्तम है। प्रत्यक्ष देखिये जहाँ प्रेम है वहाँ आनन्द है। प्रेमका वर्णन सुन्दरदासजीने कैसा किया है—

न लाज तीन लोककी न वेदको कह्यो करे।
न शंक भूत प्रेतकी न देव यक्षसे डरे॥
सुने न कान औरकी द्रसै न और इच्छना।
कहे न मुख और बात भक्ति प्रेम लच्छना॥

जब ऐसा प्रेम होता है तब तीनों लोकोंकी लाज नहीं रहती। वह तीनों लोकोंको छोड़ता नहीं है, परन्तु वह लाज प्रेममें रहती नहीं है। प्रेममें उद्धवकी कैसी दशा हुई, भरतजीकी कैसी दशा हुई थी?

रामचन्द्रजी वनसे लौटकर आये और भरतसे मिले। उस समय सुग्रीव और विभीषण रोने लगे तथा बोले कि ये भी भाई हैं और हमलोग भी भाई थे।

एक मनुष्यका स्त्रीसे प्रेम होनेपर आनन्द आता है, उससे भी बढ़कर आनन्द कंगालको राजाके साथ प्रेम होनेपर आता है। यदि उस कंगालका लाटसाहबसे प्रेम हो जाय तो उसे इतना आनन्द आता है कि वह समाता ही नहीं। यदि इन्द्रसे प्रेम हो जाय तो उसे कितना आनन्द होता होगा, उसका तो हमलोग अनुमान ही नहीं कर सकते। इन लोगोंसे प्रेम होना तो अपने वशकी बात नहीं है। परमेश्वर प्रेम करनेको तैयार हैं। ऐसे परम सुहृद् साक्षात् परमेश्वरके प्रेमको छोड़कर हमलोग विषय-भोगोंमें फँसे रहें तो हमलोगोंकी नीचताकी तो हद हो गयी। भगवान् पुकारकर कह रहे हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

प्रवचन-तिथि वैशाख कृष्ण २, संवत् १९९३।

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

भक्तोंके दिये हुए पत्र-पुष्पको मैं साक्षात् प्रकट होकर खाता हूँ। महात्मा और शास्त्र कह रहे हैं कि वह परमेश्वर अवतार लेते हैं। उनके हाथसे मरनेपर भी जीव मुक्त हो जाते हैं। उनके संहारमें भी अपार दया है।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ८)

साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, दूषित कर्म करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा धर्म-स्थापन करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ।

भक्ति करके मिलनेकी इच्छा हो तो साधु होना चाहिये। केवल कपड़े रँगनेसे ही साधु नहीं समझना चाहिये। साधुकी तरह जिनकी क्रियाएँ हैं, वे ही साधु हैं। गीतामें भी बतलाया है कि दैवी सम्पदाके आश्रित होकर मुझे भजनेवाले ही साधु हैं—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

(गीता १६। १—३)

सर्वथा भयका अभाव, अन्तःकरणकी अच्छी प्रकारसे स्वच्छता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान तथा इन्द्रियोंका दमन, भगवत्-पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेद-शास्त्रोंके पठन-पाठनपूर्वक भगवन्नाम और गुणोंका कीर्तन तथा स्वधर्मपालनके लिये कष्ट सहन करना एवं शरीर और इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता तथा मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना तथा यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोध न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग एवं अन्तःकरणकी उपरामता अर्थात् चित्तकी चंचलताका अभाव और किसीकी भी निन्दादि न करना तथा सब भूत प्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना और कोमलता तथा लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव तथा तेज, क्षमा, धैर्य और बाहर-भीतरकी शुद्धि एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव, यह सब तो हे अर्जुन! दैवी सम्पदाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं जिनमें ये लक्षण हैं वे ही साधु हैं।

इससे भी बढ़कर परमात्माके प्रकट होनेका उपाय है प्रेम। शिवजी कहते हैं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

मैं जानता हूँ हरि सर्वत्र व्यापक हैं, वे प्रेमसे ही प्रकट होते हैं।

हरि विशेष रूपसे कहाँ रहते हैं? हृदयमें। उनके नाम और गुणोंका संघर्षण करना चाहिये। इस रगड़के लगते ही भगवान् प्रकट हो जाते हैं, जैसे दियासलाईसे आग।

भगवान्‌को सच्चे मनसे पुकारनेपर भगवान् अवश्य आते हैं। जैसे माता बच्चोंके असली रोनेपर आती है। वैसे ही सच्चे मनसे रोनेपर भगवान्‌के आनेमें विलम्ब नहीं होता। जब यह विश्वास हो जाता है कि भगवान् हैं और वे मिलनेके लिये तैयार हैं, तब फिर मनुष्य भगवान्‌से मिले बिना कैसे रह सकता है?

भगवान्‌में विश्वास होनेपर उससे पाप हो ही नहीं सकता। हमलोग भगवान्‌को धोखा भी नहीं दे सकते, क्योंकि वह सब जगह हैं। भगवान्‌के सब अंग सब जगह हैं। भगवान् कहते हैं कि मैं भक्तोंका दिया हुआ खाता हूँ।

जबतक मनुष्यसे पाप होता है, तबतक वह प्रभुके रहस्यको नहीं जानता। हमलोगोंको भगवान्‌में विशुद्ध प्रेम बढ़ाना चाहिये।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

बिना प्रयोजन प्रेम करनेवाले दो ही हैं—एक तो आप और एक आपके सेवक।

दूसरे मनुष्यका उपकार करनेसे ही प्रेम होता है। इसीलिये यहाँ उपकार शब्द दिया है। सारी दुनियाको नारायणरूप समझकर उपकार करना ही भगवान्‌से प्रेम करनेका उपाय है। किसीको कष्ट पहुँचाना भगवान्‌को कष्ट पहुँचाना है। सारी दुनियाकी सेवा करे, यह भगवान्‌से प्रेम करनेका उपाय है।

लोग कहते हैं कि हम भगवान्‌से मिलना चाहते हैं, पर हमको किसीकी गर्ज नहीं है, यह उनकी भूल है।

हम प्रभुको चाहते ही नहीं। हमारा शरीर और रुपये जितना भी प्रेम भगवान्‌में नहीं है। तब हमारा प्रेम कहाँ? चाह कहाँ?

हमलोग तो लोभीकी तरह हाय धन, हाय धन करते मरते हैं। इसी प्रकार हाय प्रभु! हाय प्रभु! करते हुए मरना चाहिये। हमारी जैसी इच्छा है, वैसी करनी नहीं है। हमलोगोंकी कैसी इच्छा होनी चाहिये—

लगन लगन सब कोइ कहे लगन कहावे सोय।
नारायण जा लगनमें तन मन दीजे खोय॥

जिस लगनमें तन-मन-धन खो बैठते हैं, वही असली लगन है। हमलोगोंका मन विषयोंकी ओर जाता है, प्रभुकी ओर तो जाता ही नहीं। भगवान्‌के तत्त्वकी बातें ही रही हैं, यदि वर्षा आ गयी तो उठ गये।

हमलोगोंका कहाँ प्रेम और कहाँ श्रद्धा? यदि यमदूत आयें तो कौन कह सकता है कि मैं अभी नहीं चलूँगा। इसलिये अपना जीवन-बीमा करवा देना चाहिये। रामनामरूपी धनसे यह बीमा हो सकता है।

कबिरा सब जग निर्धना धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये जाके राम नाम धन होय॥

इस संसारमें लखपति कंगाल हो जाता है और कंगाल लखपति हो जाता है।

अबसे यह नियम बना लो कि हम भगवान्‌का भजन ही करेंगे। बस उसका बीमा हो गया। दूसरे प्रकारका बीमा यह है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस मन्त्रका साढ़े तीन करोड़ जप करनेसे भगवान्‌के यहाँ बीमा हो जाता है, फिर कोई भय नहीं रहता।

सदाकी जोखिम तो हम समाप्त करना चाहते हैं, पर थोड़ी देरकी वर्षा तथा आँधी नहीं सही जाती। मृत्युरूपी आँधीसे भय नहीं करते, पर इस आँधी और वर्षासे भय करते हैं।

हमलोगोंका पैसेमें जितना प्रेम है, उतना भी भगवान्‌के नाममें नहीं है। भगवान् कहते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

(गीता ८। ७)

हे अर्जुन! तू सब समय निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर, इस प्रकार मेरेमें अर्पण किये हुए मन, बुद्धिसे युक्त हुआ तू निःसन्देह मेरेको ही प्राप्त होगा।

भगवान् कहते हैं कि मेरा स्मरण करो और युद्ध भी करो। इसलिये किसी भी काममें भगवान्‌का स्मरण छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है। हरेक काम करते रहो और भगवान्‌का स्मरण करते रहो।

हर समय भगवच्चर्चा होती रहनेसे और उसके अनुसार साधन करनेसे मनुष्यका शीघ्र कल्याण हो सकता है।

गृहस्थाश्रममें कल्याण नहीं होता यह कहनेवाले दुनियामें भ्रम फैलाते हैं। संसारमें यह वस्तु नहीं है, यह कहनेका किसीका अधिकार नहीं है। हाँ, यह कह सकते हैं कि मैंने इस वस्तुको नहीं देखा।

वर्ण, आश्रम, देश, काल ये कोई भी भगवद्दर्शनमें बाधक नहीं हैं। मुक्तिके अधिकारी हुए बिना मनुष्यशरीर ही नहीं मिलता। भगवान् कहते हैं—तू इस शरीरको पाकर मेरा भजन कर।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(गीता ९। ३३)

फिर क्या कहना है कि पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि, परमगतिको प्राप्त होते हैं। इसलिये तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्यशरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर,

अर्थात् मनुष्यशरीर बड़ा दुर्लभ है, परन्तु है नाशवान् और सुखरहित। इसलिये कालका भरोसा न करके तथा अज्ञानसे सुखरूप भासनेवाले विषय-भोगोंमें न फँसकर निरन्तर मेरा ही भजन कर। भजन करनेसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है।

जो फलको न चाहता हुआ कर्म करता है, वही संन्यासी है। जिसकी इच्छा जिस मार्गमें साधन करनेकी है, उसके लिये वही मार्ग ठीक है। वेष बदलना संन्यास नहीं है। सांख्ययोग और ज्ञानयोगका नाम संन्यास है।

मेरी धारणासे सांख्यमार्गके अनुसार साधन गृहस्थाश्रममें भी हो सकता है। आश्रमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। संन्यास आश्रम और गृहस्थाश्रम दोनोंमें ही सांख्यका साधन हो सकता है। हाँ, इतना अवश्य है कि संन्यास आश्रममें साधनके लिये समय अधिक मिलता है।

इस घोर कलिकालमें सबके लिये भक्तिका मार्ग ही उत्तम है और ज्ञानके अधिकारियोंके लिये यह भी अच्छा है।

अपना अपमान करनेवालोंको अच्छा कहा जायगा तो उनका साहस बढ़ जायगा और वे ज्यादा गिर जायँगे। उनके गिरनेमें हम ही कारण होंगे। इसलिये निंदा और स्तुतिको समान ही समझना चाहिये न कि अधिक।

यदि हम यह समझें कि निंदा करनेवाले तो हमारा पाप घटाते हैं अर्थात् हमारा पाप अपने ऊपर लेते हैं तो ऐसी नीयत भी ठीक नहीं है, क्योंकि इसमें दूसरोंका अनिष्ट चिन्तन होता है।

किसी-किसी स्थानमें निंदा करनेवालोंको मैं रोक भी देता हूँ। न रोकनेसे उनका उत्साह बढ़कर वे दूसरोंको कष्ट देंगे। रोकना न रोकना दोनों तरहका ही व्यवहार हो सकता है।

समता ही न्याय है

वैश्यका अन्न पवित्र कैसे हो? **कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्य-कर्म स्वभावजम्।** यही काम भगवान्‌ने वैश्यके लिये बतलाया है। अगर इससे जीविका न चले तो नौकरी, शिल्पकारी आदि करके चलाया जा सकता है, परंतु वह दो नम्बर है।

न्यायसे व्यापार चलानेमें धर्मका पालन होता है। जिसमें धर्मका पालन होता है वही व्यापार पवित्र है। न्यायसे व्यापार चलानेमें कठिनता अवश्य पड़ती है, पर वह कठिनता पहले ही पड़ती है। पीछे कोई कठिनता नहीं पड़ती।

एक ओर प्राण और एक ओर धर्म हो तो धर्मपालनके लिये प्राण भी त्याग देना चाहिये।

एक ओर लाख रुपये और एक ओर धर्मपालन हो तो लाख रुपयोंको पेशाबके समान समझकर धर्मका पालन करना चाहिये।

जैसे राजा हरिश्चन्द्र धर्मके लिये अपनी स्त्रीका आधा वस्त्र काटनेको तैयार हैं। इतनी आपत्तिकालमें भी राजा हरिश्चन्द्रने अपना धर्म नहीं छोड़ा। जब राजा हरिश्चन्द्रने अपनी स्त्रीका वस्त्र काटना चाहा फिर क्या देर थी। भगवान् उसी समय प्रकट हो गये और कहा—हरिश्चन्द्र! तेरी इच्छा हो सो वर माँग। हरिश्चन्द्र भगवान्‌से वर माँगते हैं कि हे नाथ! मेरी समस्त नगरी वैकुण्ठमें चली जाय। अहा! धर्मपालनका कितना महत्त्व है कि एक मनुष्यके धर्मपालनसे समस्त नगरीका कल्याण हो गया।

राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र मर गया था, उसके लिये कफनकी आवश्यकता थी, तब भी राजा हरिश्चन्द्रने धर्मका त्याग नहीं किया।

लोग एक पैसेके लिये धर्म उठा देते हैं और चाहते हैं भगवत्प्राप्ति।

आपमें जब ईश्वरका अंश है तो धर्मपालनके लिये कटिबद्ध होकर चेष्टा करनी चाहिये। धर्मपालन करनेमें क्या कठिनाई है। धर्मपालनके लिये अपना शरीर काम आ जाय तो बड़े सौभाग्यकी बात है।

गुरु गोविंदसिंहके लड़कोंको जिनकी आयु क्रमशः सात एवं नौ वर्षकी थी, नवाबने भारी लोभ दिया था। यदि तुम दोनों मुसलमान बन जाओ तो नवाब बना दिये जाओगे। लड़कोंने कहा हम कुछ भी नहीं चाहते। हम तुम्हारी बातको कभी नहीं सुनेंगे। तब नवाबने उन दोनों लड़कोंको दीवालमें चुनवा दिया। जब दीवाल छोटे भाईके गलेतक आयी तब बड़ा भाई रोने लगा। तब छोटे भाईने कहा क्यों रोते हो? क्या मरनेसे डरते हो? तब बड़े भाईने कहा नहीं-नहीं मरनेसे नहीं डरता। इस बातके लिये रोता हूँ कि तू भगवान्‌के दरबारमें पहले जा रहा है और मैं पीछे।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(गीता ३। ३५)

अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है, अपने धर्ममें मरना भी कल्याणकारक है और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है।

चाहे शरीरको सुखा डाले, परन्तु धर्म नष्ट करनेकी भावना ही न करे।

परमात्माकी प्राप्ति मिलती हो तो उसकी परवाह न करे। एक बार नहीं चाहे पाँच बार प्राण जायँ। उसका कुछ भय नहीं

है। जिस कामके लिये शरीर मिला था वह काम हो ही गया, फिर धर्मका त्याग क्यों करें।

वैश्यको माँगना भी पड़े तो भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। जिनकी आत्मा कमजोर है उनके लिये यह कहना है कि जितना धन तुम्हारे प्रारब्धसे मिलना होगा, उतना ही मिलेगा। चोरी करनेपर भी बिना प्रारब्ध नहीं मिलता तो हम पाप क्यों करें। पाप कभी नहीं करना चाहिये। न्यायसे ही धनोपार्जन करना चाहिये। ये लोभी मनुष्योंके लिये आश्वासन है।

नास्तिककी दृष्टिसे तीसरी बात बतलायी जाती है। यदि मान लो अन्यायसे थोड़ी देरके लिये धन हो भी गया तो उस धनसे आते-जाते समय क्लेश ही होगा। उससे न इहलोकमें मंगल होगा और न परलोकमें ही मंगल होगा।

व्यापार सत्यतापूर्वक करना चाहिये। वस्तुओंके खरीदने और बेचनेमें तौल, नाप और गिनतीसे कम देना और अधिक लेना, वस्तुको बदलकर दूसरी वस्तु दे देना, एक वस्तुमें दूसरी खराब वस्तु मिलाकर दे देना, अच्छी ले लेना, नफा, आढ़त, दलाली ठहराकर उससे अधिक दाम लेना व कम देना या झूठ, कपट, चोरी व जबरदस्तीसे दूसरेके हकको लेना इन सब दोषोंका त्याग करना चाहिये। खूब हिम्मत रखनी चाहिये, जिससे धर्मका नाश न हो।

थोड़ा भी वैराग्य होनेसे सब बात अपने-आप आ जायगी। मैंने जो बात आपलोगोंको बतलायी है, इससे चौगुनी बात ऐसा साधक आपलोगोंको बतला सकता है।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाको कुत्तेकी विष्ठाके समान समझना चाहिये। हमलोगोंको निंदा जैसी लगती है, वैसी स्तुति लगनी चाहिये। आराम और भोगको तिलांजलि दे देनी चाहिये।

मनुष्य जब मान, बड़ाई और प्रतिष्ठाको भी लात मार देता है, तब ब्रह्मको प्राप्त होता है, क्योंकि उसकी समतामें स्थिति हो जाती है।

ध्यानमें जो आनन्द आता है, उसके सामने इन्द्रासन नरकके समान प्रतीत होता है। समताकी उपासना ही ब्रह्मकी उपासना है।

समता या ध्यान इन दोमेंसे एकको आज धारण करके ही उठना चाहिये। फिर यदि उद्धार नहीं हो तो कहो।

निंदा-स्तुतिको समान समझनेसे सब बातें स्वतः ही आ जायँगी। मान-अपमानको समान समझनेसे बेड़ा पार है। भयके संकल्पको ब्रह्म माननेसे भी कल्याण हो जायगा। प्राणका आना-जाना भी ब्रह्म है, इससे भी कल्याण हो जायगा।

ब्रह्म सम है, किसी भी चीजमें समताको धारण कर लो। समतासे मत डिगो, फिर बेड़ा पार है। फिर देखो कैसी जल्दी उन्नति होती है। समता मत त्यागो, बेड़ा पार है।

समता ही न्याय है, न्याय ही धर्म है और धर्म ही सत्य है और सत्य ही परमात्मा है। साक्षात् परमात्माका दर्शन चाहो तो समताका व्यवहार करो।

सबके साथ सब बातोंमें समता रखो। सब जगह समताका अर्थ लगाओ। समताकी सेवासे मुक्ति, समताके व्यवहारसे मुक्ति और समताकी खेतीसे मुक्ति। यह इतनी मूल्यवान् चीज है, इसके समान दुनियामें कोई वस्तु नहीं है। यह काममें लाकर देखो फिर भगवान् मिलते हैं कि नहीं।

महापुरुषोंकी महिमा

भगवान्‌ने संसारमें सबका उद्धार होनेके लिये उपाय बतलाया है। चाहे कैसा भी पापी क्यों न हो।

कितने पुरुष तो ध्यानयोगके द्वारा परमात्माकी उपासना करते हैं, कितने ज्ञानयोगद्वारा और कितने ही निष्काम कर्मयोगद्वारा उपासना करते हैं। इनसे चौथे मूढ़, अज्ञानी पुरुष दूसरोंसे सुनकर ही उपासना करते हैं। वे भी संसारसागरको लाँघकर परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।

महान् पुरुष कहते हैं कि तुम मिट्टी उठाकर फेंको और वह उनकी आज्ञा मानकर मिट्टी भी फेंकता है तो उससे उसका कल्याण हो जाता है।

संसारमें महात्मा कैसे खोजे जायँ?

उत्तर—जिसपर मन जमे और विश्वास हो उसे महात्मा मानना चाहिये। फिर वे जैसा कार्य बतलायें उसीके अनुसार करना चाहिये। महान् पुरुष जिस मार्गसे चलते हैं वही सच्चा मार्ग है।

महान् पुरुषोंकी पहचान यह है, जिसके द्वारा हमारेमें उत्तम गुण आवें, पापोंसे हटकर भगवान्‌का भजन हो। उन्हें ही महान् पुरुष मानना चाहिये।

महान् पुरुष यह जानते हैं कि यह कैसा पुरुष है और यह क्या करेगा। इस सबको सोचकर ही महान् पुरुष साधन बतलाते हैं।

ऐसे कोई महापुरुष हों जिनकी बात बाध्य होकर काममें लानी पड़े तो उनकी बात लग सकती है या कोई कारक पुरुष हों तो उनकी बातका विशेष असर पड़ता है और वह धारण भी हो जाती है।

मेरेमें तो यह बात है नहीं। अगर आप धारण करनेकी चेष्टा करेंगे तो धारण हो सकती है।

पातिव्रत्य धर्म

स्त्रियोंके लिये पातिव्रत्य धर्मका पालन करना और भगवान्‌की भक्ति करना मुख्य कर्तव्य है।

विधवा स्त्री जिस प्रकार पतिके जीवित रहते जैसे उसका पति चाहता था उसी प्रकार सेवा करती थी उसी प्रकारके भावोंको काममें लाना उनके लिये पातिव्रत्य धर्म है।

जो स्त्री पतिके मरनेपर भी पतिके भावोंके अनुसार चलती है वह स्त्री पतिव्रता स्त्रियोंसे भी बढ़कर है। स्त्रियोंके लिये तुलसीदासजी कहते हैं—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

मन, वाणी और शरीरसे पतिकी सेवा करना स्त्रियोंके लिये यही एक धर्म है। मनसे पतिका हितचिन्तन, वाणीसे मीठे वचन बोलना और शरीरसे उनकी सेवा करनी।

बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥

जो नारी इस प्रकारसे पतिकी सेवा करती है वह बिना ही परिश्रमके परमगतिको प्राप्त होती है।

उत्तम पतिव्रताके मनमें स्वप्नमें भी दूसरा पुरुष नहीं रहता और मध्यम पतिव्रता स्त्री परपुरुषको भाई, पिता और पुत्रके समान देखती है। जो नारी पतिके प्रतिकूल चलती है वह दूसरे जन्ममें कम उम्रमें ही विधवा हो जाती है।

जो नारी पतिको छोड़ दूसरे पुरुषसे प्रेम करती है वह सौ कल्पतक रौरव नरकमें वास करती है।

हरेक स्त्री-पुरुषको इस विषयमें खूब ध्यान रखना चाहिये। भगवान् कहते हैं मेरा भजन करनेसे मैं सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा। उसे गंगा किनारे यह निश्चय कर लेना चाहिये कि मैं भविष्यमें ऐसा पाप नहीं करूँगा। जो स्त्री अपने पतिका अपमान करती है, वह यमपुरमें नाना दुःखोंको भोगती है।

स्त्रीको गाली देना या मारना नहीं चाहिये। स्त्रियोंको राँड ऐसा भी नहीं कहना चाहिये। वाणीका सुधार करना चाहिये।

पतिको पत्नीके साथ मित्रताका व्यवहार करना चाहिये। विवाहके समय स्त्री-पुरुष दोनों ही प्रतिज्ञा करते हैं। पुरुषोंके बीमार पड़नेपर जैसी चेष्टा स्त्री करती है वैसी ही चेष्टा पुरुषोंको स्त्रियोंके लिये करनी चाहिये।

सीताजीने रामचन्द्रजीके साथ जैसा बर्ताव किया, वैसा ही व्यवहार माताओंको अपने पतिके साथ करना चाहिये। माताओंको सीताजी और पार्वतीजीकी उपासना करनी चाहिये।

हमारे यहाँ जैसे सतियोंकी पूजा होती है, उनके समान उत्तम बननेकी चेष्टा करनी चाहिये। स्वधर्मपालन करनेवाली स्त्रीकी ऐसी ही पूजा होती है। सतीजीने दक्षयज्ञमें पतिका भाग न देखकर प्राण दे दिये थे और मरते समय यह कह दिया था कि जिस जगह पतिका आदर न हो उस पिताके यहाँ रहना धिक्कार है। फिर सतीका दूसरा जन्म हिमालयके यहाँ हुआ। ऋषियोंने खूब समझाया कि तू विष्णुके साथ विवाह कर ले, परन्तु सतीने शिवके सिवाय और किसीको स्वीकार नहीं किया—

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥

भगवान् रामचन्द्रजी जब वनको जाते हैं, सीता भी उनके साथ जाती हैं। आजकल जब उनके पति भजन करने जाते हैं, तब भी स्त्रियाँ उनके साथ नहीं जातीं। वे बेटे-पोतोंके मोहमें फँसकर पतिके साथ नहीं जातीं।

विचार करनेकी बात है कि श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको वनके कितने कष्ट दिखलाये उसपर भी सीताजीने साथ नहीं छोड़ा। वह कहती हैं—'हे नाथ! आपके वियोगके समान मुझे कोई कष्ट नहीं है।' फिर भी भगवान्‌ने सीताको समझाया। तब सीता कहती हैं—

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥

इन वाक्योंको सुनकर भी मेरे प्राण नहीं निकलते हैं तो मैं समझती हूँ कि आप मुझे छोड़कर जायँगे। तब भगवान्‌ने समझा कि ये मेरे बिना नहीं जी सकती, तब साथ ले गये।

सीताका पतिसेवामें कितना प्रेम था। पतिकी सेवाके लिये पतिके साथ जानेमें जिद्द करनेमें कोई दोष नहीं है।

पतिमें कोई बुरा दोष हो तो समझाकर वह दुर्व्यसन छुड़ाना चाहिये। कोई कटु वचन कहे तो अपना ही अपराध समझकर अपनी भूल ही निकालनी चाहिये। अपनेको गालियाँ भी दे, तब भी उसका हित चाहना चाहिये। अपने साथ बुराई करे उसके साथ भी भलाई करनी चाहिये। जैसे राजा युधिष्ठिरने दुर्योधनके साथ की थी। संसारमें वही साधु पुरुष है। इस प्रकारका व्यवहार ही मनुष्यका सुधार करनेवाला है। वैरीका सुधार उपकार करनेसे ही होता है। अतएव इस प्रकारका व्यवहार करना चाहिये।

सीताने वनमें जाकर भगवान्‌की बड़ी भारी सेवा की। एक समय रावण उन्हें उठा ले गया और उसने अपनेको पति बनानेके लिये कहा। उस समय सीता कैसे कठोर वचन कहती हैं—

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥
सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

अरे नीच ऐसी बातें क्यों बकता है। मिथ्या गालको क्यों बजाता है। जब रामचन्द्रजी आश्रममें नहीं थे उस समय चोरकी तरह तू मुझे उठाकर ले आया। रामचन्द्रजी इस पापका फल तुझे तुरन्त ही देंगे।

इसी प्रकार यदि स्त्रीपर कोई आपत्ति पड़े तो प्राण देनेको तैयार रहे, पर धर्मका त्याग न करे।

गीताके तत्त्वको जाननेसे मुक्ति

गीताके तत्त्वको जाननेमात्रसे मुक्ति हो जाती है। जानना उसे कहते हैं—जैसे सत्य बोलना चाहिये। यह सुनकर हम झूठ न बोलें तो समझना चाहिये कि हम इस बातको जान गये।

हमने सुना कि दूधमें जहर है। इस बातका हमको विश्वास हुआ तभी माना जायगा जब हम दूध न पीयें। पीते हैं तो हमारा उसमें विश्वास नहीं है।

परमात्मा सर्वत्र निराकार और साकार रूपमें हैं। यह बात समझनेपर हम सदा ही परमात्माके दर्शन करते रहेंगे और आनन्दका पार नहीं रहेगा। बादलके समान तो साकार हैं और आकाशके समान निराकार हैं।

गीतामें सात अध्यायसे बारह अध्यायतक भक्तिका वर्णन है। प्रत्येक अध्यायमें भिन्न प्रकारसे भक्तिका वर्णन किया गया है। सातवें अध्यायमें भगवान् कहते हैं मैं सबका कारण हूँ। नवेंमें सब कुछ मैं ही हूँ। दसवेंमें सार-सार मैं हूँ। ग्यारहवेंमें सब कुछ मेरेमें ही है। एक ही सिद्धान्तको मानते हुए भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन किया है।

सातवेंमें कारणरूपमें कैसे हैं, सारे संसारमें व्यापक हूँ जैसे जलमें रस, वेदोंमें प्रणव, आकाशमें शब्द, सम्पूर्ण प्राणियोंमें उनका जीवन। रस, प्रणव, शब्द और जीवनको छोड़कर शेष बचता ही क्या है, इसलिये कारणरूपमें सब भगवान् ही हैं।

आठवें और नवें अध्यायमें दूसरे प्रकारसे वर्णन है। जड़को बाद देकर चैतन्य मैं ही हूँ।

साधक परम दिव्य पुरुषको प्राप्त होता है। यह पुरुष कैसा है?

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥

(गीता ८।९)

जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यके सदृश नित्य चेतन, प्रकाशरूप और अविद्यासे अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका स्मरण करता है।

परम पुरुषकी आगे जाकर एकता भी बतायी है।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

(गीता ८।२०)

उस अव्यक्तसे भी अति परे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो सनातन अव्यक्तभाव है, वह परम दिव्य पुरुष सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता।

उस परमात्माको अव्यय, अव्यक्त, अक्षर कहते हैं।

अव्यक्तमूर्ति कहकर नवें अध्यायमें कहते हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

(गीता ९।४)

मुझ निराकार परमात्मासे यह सब जगत् जलसे बर्फके सदृश परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधारपर स्थित हैं, किंतु वास्तवमें मैं उनसे स्थित नहीं हूँ।

नवें अध्यायमें बतलाते हैं कि मैं ही वायुकी तरह सब जगह व्याप्त हूँ। सारा संसार मेरेमें ही है। फिर कहते हैं कि सब कुछ

मेरा ही स्वरूप है। जलमें बर्फकी तरह सारे भूत प्राणी मेरे ही स्वरूप हैं।

दसवेंमें अर्जुनने पूछा—किन-किन भावोंमें आपका चिंतन करूँ? तब भगवान्‌ने सार-सार बात बतलायी और कहा छोड़ सबको, यह सब मेरे एक अंशमें स्थित है—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(गीता १०। ४२)

अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी योगशक्तिके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।

ग्यारहवेंमें फिर विश्वरूप दिखाया कि सब मेरेमें ही है।

जलका तत्त्व जो समझ लेता है, उसे बादलमें भी जल दीखता है। जिस प्रकार आकाशसे ही सबकी उत्पत्ति है और आकाशमें ही सब हैं।

श्रद्धासे विशेष लाभ

गंगाजीमें, भगवान्‌के नाम और रूपमें विश्वास हो जाय तो उद्धार होनेमें कोई शंका नहीं है। यह शास्त्र और युक्तिसे प्रमाणित बात है। विश्वास होनेपर ही बात काममें लायी जाती है। जितनी बात काममें लायी जाती है उतना ही विश्वास हुआ है। आप गीताका अभ्यास करते हैं। हमलोगोंको निष्कामकर्म और सद्‌गुणोंके बारेमें जितना मालूम है, उसमें विश्वास कर लें। विश्वास उसीका नाम है जो काममें लाया जाय।

आचरणहीन, महापतितका भी भगवान्‌में श्रद्धा और विश्वास होनेसे उद्धार हो सकता है। यह भी शास्त्रमें प्रमाणित है। ये सभी बातें जोरोंके साथ काममें लानी चाहिये। वीरता-धीरतासे डटा रहे, कभी छोड़े नहीं, चाहे सिर कट जाय पर डटा रहे। जैसे महाराज युधिष्ठिर धर्मसे हटते ही नहीं थे, वैसे ही हमलोगोंको डटे रहना चाहिये। उनका ध्यान करनेसे आत्मा पवित्र होती है—

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिर कीर्तनेन।

हम भी बचे हुए जीवनको युधिष्ठिरसे भी अधिक पवित्र बना सकते हैं।

मनुष्य दुःखको भी आनन्द समझे। हमलोगोंको वीरता-धीरता, गम्भीरता और जोशके साथ साधन करना चाहिये।

हमलोग निष्काम कर्मयोगका खूब पालन कर सकते हैं। इससे हमारा अन्न पवित्र हो जाता है। इससे हमारे घरमें अलौकिक पवित्रता आ सकती है। हमारा घर ऐसा बन सकता है जैसा राजा जनकका था। यह सोचकर हमें राजा जनक और तुलाधार वैश्यकी तरह अपना जीवन बिताना चाहिये।

समलोष्टाश्मकाञ्चनः पत्थर, सोने और मिट्टीमें कोई भेद नहीं है। ये सभी पृथ्वी अर्थात् मिट्टीसे निकलते हैं, इसलिये मिट्टी ही हैं। इस बातको ध्यानमें रखकर चले। एक स्वार्थको छोड़ दे।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

भगवान्‌को निमित्त मानकर सबकी सेवा करना, सबको आराम पहुँचाना ही भगवान्‌को आराम पहुँचाना है। यही परम धन है। इसे एक साल पालन करके देखो।

गोपियाँ अपने घरका काम कर रही हैं, मुँहसे भगवान्‌के नामका जप हो रहा है, मनसे भगवान्‌का ध्यान हो रहा है, कोई स्मरण कर रही है, कोई भगवान्‌के मुखारविंदको देखकर मुग्ध हो रही है। कोई गद्‌गद भावसे रो रही है। कैसी आनन्दकी कथाएँ हैं।

हमलोग भी अपनी ऐसी दशा बनाकर जो व्यापार करना हो करें तो बहुत शीघ्र ही आत्मा पवित्र हो सकती है। यह साधन तो अमृत है। रुपया तो धूलके समान है, विश्वास होना चाहिये।

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

परमात्माका भजन-ध्यान और साधन अमृत है। संसारके पदार्थ विष हैं।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

उसको कोई श्रेष्ठ नहीं कहता जो पारस देकर चिरमी लेता है। परमात्मविषयक साधन पारस है। यह सोचकर परमात्माके लिये

तत्पर होना चाहिये, अन्यथा जैसा तुलसीदासजीने कहा है, वही दशा होगी।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

इस उपायको जो नहीं मानता है वह अन्तकालमें सिर धुन-धुनकर पछताता है। काल, कर्म और ईश्वरपर मिथ्या दोष लगाता है।

इस समय काल भी बड़ा अच्छा है—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

कलियुगके समान युग आ नहीं सकता, केवल विश्वासकी आवश्यकता है। यह काल बहुत अच्छा है, पहलेके समयमें लोगोंकी ध्यान, भजन, सेवामें बहुत अच्छी श्रद्धा हुआ करती थी। इसीसे उनका कल्याण हुआ करता था। जैसे शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌को भागवतकी कथा सुनायी। उस समय कथा तो हजारों मनुष्योंने सुनी, पर कल्याण तो राजा परीक्षित्‌का ही हुआ।

जितनी श्रद्धा होती है उतना ही प्रयत्न होता है। श्रद्धा अपने-आप ही क्रिया करा लेती है। जैसे व्यापारमें धनके लिये, स्त्री-पुत्रादिके लिये श्रद्धा होनेपर क्रिया अपने-आप ही हो जाती है। संसारमें एक-एक चीज ऐसी है जो अलभ्य लाभ दे सकती है।

एक दरिद्रके पास पारस था, वह उसे पत्थर समझता था, पारसका पता लगनेके साथ ही उसकी सब क्रियाएँ उस पत्थरके प्रति पारसकी तरह होने लग गयीं।

मनुष्यकी जितनी श्रद्धा होती है उतना ही उसे लाभ होता है। मनुष्यकी जितनी श्रद्धा होती है उतना ही प्रेम होता है। इससे यही बात सिद्ध हुई कि मनुष्यको श्रद्धा बढ़ानी चाहिये।

साधन कठिन नहीं है

प्रश्न—भगवान्‌के दर्शन, स्पर्श, भाषणके उद्देश्यको लेकर चलनेवालोंके लिये क्या साधन है?

उत्तर—यह भगवान्‌की कृपासे हो सकता है। ऐसा उद्देश्य रखनेवालेके लिये साधन यह है कि तन-मन-धन भगवान्‌के अर्पण कर दे, संसारके हितके लिये सर्वस्व अर्पण कर दे, जिसमें देनेवाला और लेनेवाला दोनोंको आनन्द हो, बस, यही साधन है, जैसे मयूरध्वजका पुत्र रतनकुँवर। इसका आदर्श सामने रखना और इसी प्रकार आनन्द मानना चाहिये। तन-मन-धनसे लोगोंको आराम पहुँचाना, जिससे उनको प्रसन्नता हो एवं उन्हींके समान हमको भी प्रसन्नता हो—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥
य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

(गीता १८। ६७-६८)

हे अर्जुन! इस प्रकार तेरे हितके लिये कहे हुए इस गीतारूप परम रहस्यको किसी भी कालमें न तो तपरहित मनुष्यके प्रति कहना चाहिये और न भक्तिरहितके प्रति तथा न बिना सुननेकी इच्छावालेके ही प्रति कहना चाहिये एवं जो मेरी निन्दा करता है, उसके प्रति भी नहीं कहना चाहिये, परन्तु जिनमें यह सब दोष नहीं हों, ऐसे भक्तोंके प्रति प्रेमपूर्वक, उत्साहके सहित कहना चाहिये। क्योंकि जो पुरुष मेरेमें परम प्रेम करके, इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा अर्थात् निष्कामभावसे

प्रेमपूर्वक मेरे भक्तोंको पढ़ायेगा या अर्थकी व्याख्याद्वारा इसका प्रचार करेगा वह निःसन्देह मेरेको ही प्राप्त होगा।

भगवत्प्राप्तिके लिये जो कष्ट उठाना पड़े, उठाना चाहिये। कठिन नियम साधन करे तो वह भी ठीक है। माला जपना आरम्भ करना चाहिये और पूरी भगवद्गीताका पाठ अर्थपर ध्यान देते हुए करना चाहिये, उसमें लगभग सवा घंटा लगता है। हर एक कार्यके लिये मनुष्यको निश्चय मानना चाहिये कि वह कार्य कष्ट-साध्य नहीं है, अपितु सम्भव है।

भगवत्प्राप्ति और साधन कठिन माननेवालेके लिये कठिन और सरल माननेवालेके लिये सरल होता है। वास्तवमें कठिन नहीं है। भक्तलोग भी सरल कहते हैं तथा भगवान् भी सरल कहते हैं—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

(गीता ९। २)

यह ज्ञान सब विद्याओंका राजा तथा गोपनीयोंका भी राजा एवं अति पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला और धर्मयुक्त है, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।

आसुरी संपदाका त्याग और दैवी संपदाका ग्रहण करना अमृत तुल्य है। मनुष्य रुपयोंके लिये कठिन कार्य कर लेता है, किन्तु इस भगवत्प्राप्तिमें, प्रभुकी प्राप्तिमें कठिनता नहीं है तो भी नहीं करता। जोर देकर दावेके साथ निश्चय करो कि आसुरी सम्पदा हमारे अंदर नहीं आ सकती—ऐसा निश्चय करनेसे फिर नहीं आयेगी। आसुरी सम्पदा आग है, इसे जान-बूझकर कौन धारण करेगा। जिस प्रकार दूधके कटोरेके पास सर्प बैठा हुआ

देखकर उसे निश्चय होता है कि यह सर्पका जूठा किया हुआ है। ऐसा जान लेनेपर जैसे दूधका स्वतः त्याग हो जाता है, उसी प्रकार आसुरी सम्पदा मायारूपी सर्पिणीका विष है—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम्॥

(गीता १६। ४)

हे पार्थ! पाखण्ड, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध और कठोरवाणी एवं अज्ञान भी यह सब आसुरी सम्पदाको प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं।

जान-बूझकर इस विषका सेवन भला कौन करेगा? कोई नहीं। ऐसा सोचनेपर यह दोष फिर नहीं आ सकेगा।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

(गीता २। ५५)

हे अर्जुन! जिस कालमें यह पुरुष मनमें स्थित सम्पूर्ण कामनाओंको त्याग देता है, उस कालमें आत्मासे ही आत्मामें सन्तुष्ट हुआ स्थिरबुद्धिवाला कहा जाता है।

मनोगतान् कामान् प्रजहाति—मनमें रहनेवाली सम्पूर्ण कामनाओंको त्याग देता है। तृष्णा, इच्छा, स्पृहा तथा वासनाको सर्वथा त्याग देना ही त्याग है। तृष्णा—प्राप्त वस्तुकी बढ़नेकी चाहना। इच्छा—जिस वस्तुका अभाव हो उसकी चाहना। स्पृहा—शरीरनिर्वाहकी आवश्यक वस्तुओंकी चाहना। वासना—यह देह बना रहे यह चाहना। आत्माकी जो विज्ञानानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें अटल स्थिति है उसीका नाम अटल स्थिति है। ध्यानके लिये चलते-फिरते स्वरूपसहित नामजप करे, यदि

विस्मरण हो जाय तो भारी पश्चात्ताप करे। संसारी पदार्थ यदि पकड़में आयें तो उन्हें छुड़ा दे।

नित्य एकान्तमें एक घंटा या डेढ़ घंटा साधन करनेका समय है, उसे मूल्यवान् बनाओ, जल्दबाजी मत करो। वर्तमान साधनका सुधार जोर देकर करना चाहिये, यह अवश्य सफल होगा।

स्वभाव दोषसे ही साधन ढीला है, यह चोरी है। मनको समझाओ कि तुम भगवान्के निमित्त बैठे हो, संसारका चिन्तन करना निरी मूर्खताके सिवाय और कुछ नहीं है। अटल विश्वास रखो, ध्यान अवश्य होगा।

जैसे सींग मारनेवाली बदमाश गायको खूँटा बँधे ही पानी देते हैं। इन्द्रियाँ बदमाश हैं, इन्हें इनके गोलकमें ही बाँध दो। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधका संयम रखो, असंयमसे पतन होता है। इन्द्रियोंका स्थान ही उनका खूँटा है।

मन-इन्द्रियोंका पूरा संयम रखो। सारथी जैसे घोड़ेकी लगाम खींचकर रखता है, यदि कुछ भी ढिलाई की तो ये इन्द्रियाँ मार डालती हैं। जैसे उजाड़ गायके तीक्ष्ण सींग। अपनी आवश्यकताओंको भी कम करना चाहिये।

व्यर्थ चिन्तन कैसे मिटे?

प्रश्न—ध्यानके समय फालतू बातें आजकलकी ही नहीं चालीस वर्ष पूर्वकी जो देखी-सुनी है वही आ जाती हैं, क्या उपाय करें?

उत्तर—इसका उपाय यही है कि जब फालतू फुरणा आये तब एकदम मनको धिक्कार दो कि मूर्ख! क्या करता है? फिर भी नहीं माने तो भगवान्‌के सामने करुणभावसे पुकार लगाओ। हे नाथ! मुझे कुछ नहीं चाहिये, केवल आपके चिन्तनमें एक क्षण भी बाधा न हो। यह भावना सकाम होनेपर भी हानि नहीं है, गद्‌गदभावसे प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रश्न—ऐसा हो जाय कि सबसे घृणा हो जाय फिर संसारी भावना ही न हो?

उत्तर—जब ऐसा ज्ञान हो कि फालतू बातें आयीं, उस समय चित्तमें जोर देकर प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभु! मेरा चिन्तन ऐसा क्यों हो रहा है। आपका विस्मरण क्यों होता है? आपकी दया होते भी ऐसा क्यों हो रहा है, यह पाजी मन नहीं मानता क्या करूँ? भगवान् दया करें—दया करें, मेरा मन आपके प्रेममें लगा रहे, हे नाथ! हे प्रभु! चाहे जैसे हो आप दया कीजिये।

मनको फटकार लगाओ कि इसमें क्या लाभ है। रे मन! सोचो तो सही, अरे व्यर्थ समय क्यों नष्ट करता है, रे मन! बुरी आदत छोड़ दो। यह विषयचिन्तन व्यसन है और कुछ नहीं, उसमें भी पतन है। देखो हम जिसकी निंदा करते हैं उसका कुछ नहीं बिगड़ता उलटा हमारा ही नुकसान होता है। सदैव मनके द्रष्टा बने रहो।

प्रश्न—जहाँतक खयाल रहता है वहाँतक तो द्रष्टा रहते हैं और जब खयाल ही नहीं रहे तो अभावमें क्या करना चाहिये?

उत्तर—ज्ञानमार्गमें तो खयाल रहता है नहीं तो घड़ी पासमें रखे पाँच-पाँच मिनटमें सँभाल करता जाय कि मन सावधान है कि नहीं। सँभालनेमें सावधानी रहती है। बीचमें व्यवधान हुआ है, उसको सँभालना है। ध्यान चल रहा है तो उत्तम ही है, सँभालना है ही नहीं। जब-जब मनको देखो कि फालतू बातमें जाता है तब-तब खूब रोना, पश्चात्ताप करना चाहिये।

प्रश्न—रोना नहीं आता।

उत्तर—मनसे पूछो कि क्या चाहता है? जब वह कहे कुछ नहीं तब उसको समझाना चाहिये कि भाई कुचिन्तन करना तेरे लाभकी बात नहीं है, इसको छोड़नेपर तुम्हें परम लाभ होगा।

प्रश्न—समझाते समय तो लगता है कि अब समझ गया, बिलकुल सीधा हो गया। अब कभी विषयोंमें नहीं जायगा, किन्तु फिर बिगड़ जाता है। जैसे कुत्तेकी पूँछ बाँसकी नलीमें रही तबतक सीधी और नली निकाली तो फिर टेढ़ी-की-टेढ़ी।

उत्तर—मन-इन्द्रियोंको ढीला नहीं छोड़ना चाहिये। ढीला छोड़नेसे ही ये उत्पात करते हैं। सदैव वशमें रखो, सावधानी रखो, सावधान रहो। मनमें ऐसा भाव जमा लो कि भगवान् सर्वत्र विराजमान हैं।

प्रश्न—पदार्थ देखते ही भगवान्‌की याद नहीं आती, क्या करें? पदार्थ याद रह जाता है।

उत्तर—भागवतमें जिस प्रकार बलदेवजीने बछड़े, ग्वालबालोंको कृष्णमय देखा था, वहाँ बलदेवजीको केवल कृष्ण ही दीखते थे। ब्रह्माजीने सोचा कि मैंने बछड़े चुरा लिये हैं तो कृष्णने क्या

किया? ऐसा सोचकर जब देखने लगे तो ऊपरसे तो बछड़े, ग्वाल-बाल बराबर दीखते थे, किन्तु अंदर तो केवल कृष्ण-ही-कृष्ण दीखे। इसी प्रकार जिस पदार्थमें मन जाय, ऊपरसे तो पदार्थ है ही, किन्तु भीतर उनमें अपने इष्टदेव कृष्णको ही देखो, ऐसा करनेसे पदार्थ याद नहीं रहकर कृष्ण ही याद रहेंगे।

जैसे काँचका महल बना हुआ है और उसमें जिधर देखो महल-ही-महल दीखता है। संसारके स्थानमें काँचकी कल्पना करना और अपने बिम्बको इष्टदेवका बिम्ब देखनेसे सर्वत्र एक वही दीखेगा। सर्वत्र वही है, रोम-रोममें, पत्ते-पत्तेमें, कण-कणमें केवल वही है। निश्चित बुद्धिसे देखो, भगवान्‌के अर्पित मन-बुद्धिसे देखो—

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(गीता १२। १४)

जो ध्यानयोगमें युक्त हुआ, निरन्तर लाभ-हानिमें सन्तुष्ट है तथा मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए, मेरेमें दृढ़ निश्चयवाला है, वह मेरेमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मेरेको प्रिय है।

बुद्धिको दृढ़तासे अर्पण करो। मनसे चिन्तन करो, बुद्धिसे निश्चय करो तो वह प्राप्त होता है।

एक ईश्वरभक्त था, वह भगवान्‌की पूजा किया करता था, उसकी भावना यह थी कि सबमें भगवान् हैं। इस प्रकारकी भावना करते-करते एक दिन वह पुष्प चढ़ाने लगा तो उस पुष्पमें साक्षात् भगवान् दीखे, पूजाकी जो सामग्री उठाता, उसे उस सामग्रीमें साक्षात् भगवान् ही दीखते, उसमें हँस रहे हैं, दूसरा पुष्प लेने

गया तो वृक्षमें साक्षात् भगवान् मूर्तिमान् विराज रहे हैं, वहाँ भी यही हाल, क्या करें। अब तो पूजा बंद हो गयी। भक्तने कहा भगवन्! तुम-ही-तुम दीखते हो। मुग्ध हो जाता है, फिर स्तुति की, कहा— भगवन्! आपकी पूजा मैं कैसे करूँ? सब कुछ तो आप ही हो, पूजा किसकी कैसे करूँ? पुष्प कैसे चढ़ाऊँ? जिसको उठाता हूँ वही तुम हो, इससे तो मेरी पूजा बंद हो गयी। प्रभुने प्रकट होकर कहा कि तुम्हारा यह स्वभाव कि पूजा कैसे करूँ, तुम्हारी असली पूजा यही है। भक्त बोला— बिना पूजा किये रहा नहीं जाता। प्रभु बोले—तुम्हारी पूजा समाप्त हो गयी।

सबमें प्रभुको देखना ही सीयराममय है। जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँसे हटाकर प्रभुमें लगायें।

प्रश्न—विषय देखनेसे विषयाकार वृत्ति होकर वही चिन्तन होता है।

उत्तर—यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

(गीता ६। २६)

जिसका मन वशमें नहीं हुआ हो, उसको चाहिये कि यह स्थिर न रहनेवाला और चंचल मन जिस-जिस कारणसे सांसारिक पदार्थोंमें विचरता है, उस-उससे रोककर बारम्बार परमात्मामें ही निरोध करे।

इस श्लोकको काममें लाना, इसके अनुसार चलना चाहिये, कुवासनाओंका त्याग विवेक-वैराग्यसे करना चाहिये। विवेक यह कि सब फालतू है, इस प्रकार मनको समझाना चाहिये। कुवृत्तियोंके स्वभावको निर्बल करना ही वैराग्य है। इस प्रकार सब त्याग देना चाहिये; क्योंकि यह सब त्याज्य हैं, घृणित हैं।

एक तो संसार झूठा होनेके कारण इसमें धोखा है, क्षणिक होनेसे दु:खदायी है और साथ ही चौरासी लाख योनिका कारण है, दु:खयोनि है। ऐसा सोचना चाहिये कि प्रभु दिव्यस्वरूप हैं, कहाँ वह आनन्द और कहाँ यह दु:ख, कितना अंतर है।

प्रभुके दिव्य स्वरूपका ध्यान, रूप, गुणका चिन्तन खूब बढ़ाना चाहिये। महात्मालोग कहते हैं कि चिन्तन छूटनेका कारण ही क्या है? जब प्रभु सर्वव्यापी हैं, घट-घटमें हैं। अरे मन! प्रभुको छोड़कर, आनन्दको छोड़कर कहाँ विषयोंमें जाता है, आश्चर्य है! इस प्रकार समझानेसे मन समझता है और जो साक्षात् अमृत है, उसको चाहता है। जैसे दूधका प्याला मीठा है, उसमें साँपने मुँह लगा दिया तो समझ गये कि वह त्याज्य है। यानि संसारी भोग मीठे दीखते हैं, किन्तु उसमें मायारूपी सर्पिणीका मुँह लगा है, ऐसा सोचकर वह त्याग देता है। जब यह ज्ञान हो गया कि वह दूध विषरूप है, तब मन उधर नहीं जाता, यदि इतना देखते-सोचते भी जाता है तो समझो अभी यह प्रभुको नहीं जाना, अभी इसने भोगोंको विष समझा नहीं। इस विषको संसारी नहीं समझते और समझनेकी आवश्यकता भी नहीं समझते, हाँ, ज्ञानी समझते हैं, अत: मनको समझाओ कि अरे मन यह क्या करता है, खबरदार! शान्त हो।

प्रश्न—यह मन क्रमश: समझेगा या नहीं। हमको तो भरोसा नहीं होता। इसका हठ देखनेसे शंका-सी होती है। यह धोखा देता है, समझमें नहीं आता क्या करना चाहिये?

उत्तर—मनमें खूब साहस रखना चाहिये। यह भावना करें कि यह मन तो ऐसा ही है अच्छा होगा या नहीं। तब सोचें कि पूर्वसंचित पापसे ही कुवासना आयी है। इसको छोड़ो, मन तो पाजी है, समय-समयपर साधकको धोखा देता है। काम-

क्रोधादि शत्रु हैं, इनको मार डालो। ये हमको कुमार्गपर कैसे चलायेंगे, जब हम नहीं चलेंगे। भगवान् स्वतः कहते हैं कि भरोसा रखना चाहिये।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९। ३२)

हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य और शूद्रादिक तथा पापयोनिवाले भी जो कोई हों, वे भी मेरी शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मेरेमें अनन्यचित्तसे स्थित हुआ, सदा ही निरन्तर मेरेको स्मरण करता है, उस निरन्तर मेरेमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

इन भगवद्वाक्योंपर विचार कर भरोसा रखो और भावना रखो कि भगवान्की हमपर दया है। चिन्ता क्या है? विजय अवश्य होगी, भले ही दर्शनमें विलम्ब हो।

भगवच्चर्चा और भगवद्दया ऐसी वस्तु है कि इसके समान कोई चीज नहीं है, इसके आगे किसीकी नहीं चलती। हर समय इस प्रकारसे मिलना कठिन है। भगवान्ने जो यह मौका दिया है वह उनसे मिलनेके लिये ही दिया है।

फिर इस प्रकार कहे कि प्रभु मैं क्या प्रायश्चित्त करूँ, कौनसे कठिन व्रत करूँ, जिससे थोड़े ही समयमें आपसे मिल सकूँ।

मनको समझाये कि यह संचित पापका ही कारण है, इसका

प्रायश्चित्त यही है कि प्रभुका आश्रय लेकर इसे दबा दो तो कभी पापकी फुरणा आयेगी ही नहीं।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

(गीता १८। ४३)

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें कभी न भागनेका स्वभाव एवं दान और स्वामीभाव अर्थात् निःस्वार्थभावसे सबका हित सोचकर शास्त्रानुसार शासनद्वारा प्रेमके सहित पुत्रतुल्य प्रजाको पालन करनेका भाव—ये सब क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं।

इस श्लोकके अनुसार हमें भी वीरता, धीरतासे काम लेना चाहिये। यह तो युद्ध है करते जायँ। शूरवीरतासे तेज चलें, फिर ऐसी कोई ताकत नहीं जो हमें खा सके। धैर्य रखे, आफत आने दो जितनी आये। अर्जुनके पास शस्त्र होनेपर भी साथमें प्रभु बैठे थे, ध्यान रखो।

प्रश्न—मोह किसे कहते हैं?

उत्तर—आसक्ति, सांसारिक प्रेमको मोह कहते हैं।

प्रश्न—मोह कैसे छूटे? इससे भगवत्प्रेम ही छूट जाता है, क्या करूँ?

उत्तर—इस रोगमें अधिकांश लोग फँसे हैं, संसारमें सुख प्रतीत होता है और सुखकी प्रतीति होनेसे मोह होता है। इसी कारण मनुष्य इसमें बँधे हुए हैं और भगवान्‌को भूल जाते हैं। पुत्रादिमें ममता नहीं होनी चाहिये। यह ज्ञान होनेपर भी हम नहीं चेतते।

प्रश्न—मोह सच्चा है या झूठा?

उत्तर—प्रतीतिकालमें सच्चा लगता है, संसारसे संसर्ग होता है तब सच्चा लगता है, इसीलिये ऐसा होता है। रोगी कुपथ्य

करता है तो फल भी वैसा ही होता है वास्तवमें यह सुख सच्चा नहीं है। **'नासतो विद्यते भावो।'** संसारी भोग कायम नहीं रहता, इसलिये सच्चा नहीं है। मनुष्य भोजन करता है और करते-करते छोड़ देता है, क्योंकि फिर उसको सुख नहीं होता, पेट भर जाता है। ऐसे ही पुष्पमें सुगंध होती है, उसको एक-दो बार सूँघनेपर फिर अरुचि हो जाती है। प्रातःकाल फूल सुन्दर एवं सुगंधित था, दोपहरको मुरझा जाता है, दूसरे दिन सूख जाता है। प्रातःकालसे सायंकालमें अंतर पड़ जाता है। दो दिन बाद तो उसका रूप-रंग भी बदल जाता है। इससे पता चलता है कि किसी भी पदार्थमें सुख नहीं होता।

प्रश्न—हर समय सुख नहीं होता, किन्तु क्षणिक तो होता है?

उत्तर—यह धोखा मात्र है, केवल सुखकी कल्पना है। उसमें सुख तो क्षणिक भी नहीं है, क्योंकि एक ही पदार्थ सबको अनुकूल नहीं पड़ता। जैसे मांस खानेवालेको रुचि होती है और नहीं खानेवालेको घृणा होती है, पदार्थ एक ही है किन्तु भावना पृथक्-पृथक् दो प्रकारकी है। जैसे सुन्दर युवा स्त्री विरक्तको बुरी दीखती है, कामीको अच्छी और भोगीको रमणीय, यही कल्पना ब्रह्माण्डमें भी कर लेनी चाहिये। परमात्मा जहाँ हैं वहाँ आनन्द-ही-आनन्द है और वह सर्वत्र विद्यमान हैं। वास्तवमें भोगोंमें आनन्द नहीं है, मात्र दुःख ही है। भोगका परिणाम सब जगह, सब स्थानपर खराब ही होता है—क्या इस लोकमें क्या परलोकमें। स्त्रीगामीको रोग हो जाते हैं, आयु क्षीण हो जाती है, तेज एवं वीर्य घट जाता है। अतः सुख क्षणिक है, रोग अनन्त।

प्रश्न—हम समझते हुए भी नहीं समझते, मोह नहीं हटता, क्या करूँ?

उत्तर—इस विषयमें यह विचारना है कि मनुष्यशरीरकी प्राप्ति क्षणिक सुखके लिये नहीं, अपितु अनंत सुखके लिये है। इस ओर ध्यान देनेसे मालूम पड़ता है कि मनुष्ययोनि अन्य योनियोंसे श्रेष्ठ है। क्षणिक सुखके लिये यह शरीर नहीं मिला है, क्योंकि यह क्षणिक सुख तो अन्य योनियोंमें भी मिलता है। यदि क्षणिक सुखके लिये मिला मान भी लिया जाय, फिर हमसे तो वेश्या भी अच्छी है, वेश्याको जितना आनन्द प्रतीत होता है, उतना ही आनन्द कुत्तेको कुतियोंसे, गदहेको गधीसे मिलता है।

जब दधीचि ऋषिके पास इन्द्र गये तो मुनिने पूछा—क्यों आये हो? इन्द्रने कहा—ज्ञान सीखने।

मुनि बोले—तुम्हें ज्ञान नहीं बता सकता, क्योंकि जिस प्रकार तू इन्द्राणीके साथ आनन्द करता है, उसी प्रकार कुत्तेको भी कुतियोंसे आनन्द मिलता है, अतः मैं तुम्हें ज्ञान नहीं दूँगा। दधीचि ऋषि तो दूसरे ही आनन्दमें मग्न थे, उन्हें इन्द्र-सुखसे घृणा हो आयी, क्योंकि सब पदार्थ क्षणिक हैं।

प्रश्न—हम जान-बूझकर संसारी भोगोंमें जाते हैं, परमेश्वरमें नहीं, क्या करें?

उत्तर—कारण यह है कि हमको जितने मिले, विषयोंके संसर्गका उपदेश देनेवाले ही मिले।

प्रश्न—इनका तो कहीं व्याख्यान नहीं होता।

उत्तर—इनका क्रियारूपसे व्याख्यान होता ही रहता है। परस्पर खाने-पीनेकी, शौक-शौकीनीकी बातके सिवाय कोई दूसरी बात ही नहीं करता। द्वेष तो कुत्ते-बिल्लीमें भी होता है। वे भी परस्पर रोटीके लिये झगड़ते हैं। इसके सिवाय जितने मिले रुपयोंका प्रभाव बतानेवाले मिले। भगवान्‌का प्रभाव बतानेवाले नहीं मिले।

रुपयोंका लोभ हमें बचपनसे ही लगा है। बाजारमें पिताके साथ गये, पेड़ा दिखा तो रोये, बस, एक पैसा मिल जाता। कुछ दिन बाद फिर माँगा तो नहीं मिला, फिर चोरी की। इस रुपयेके लिये ही दुनियामें मुकदमे चलते हैं। जिधर देखो उधर रुपये ही हैं और रुपयेको ही भगवान् मान लिया है। यदि आज ऐसी खबर दे दें कि अमुक स्थानपर कपड़ा बँटनेवाला है तो अनगिनत लेनेवाले एकत्र हो जायँगे, किन्तु प्रभु गुणानुवादमें कोई नहीं आयेगा। अहा देखो! हमलोग रुपयोंके प्रवाहमें बह रहे हैं, क्या करें? किन्तु निश्चय करो कि संसारका सब सुख एकत्र करके परमात्माके सुखकी एक बूँदकी तुलना करो तो वह एक बूँद संसारी सुखसे अत्यन्त विलक्षण है। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाको विषके समान समझो। इत्र-फुलेलका आनन्द वैराग्य होनेपर मूत्र-सदृश लगता है। भला गुड़ खानेवालेको अमृतका क्या पता। जिस देशमें सूर्य नहीं होता, जहाँ अंधकार है, वहाँ जुगनूका प्रकाश ही उन्होंने उत्तम मान रखा है। उनसे कहें कि भाई हमारे यहाँ तो दिन भी होता है तो वे बोलेंगे दिन क्या चीज है, कितनी बड़ी चीज होती है। हमने कहा कि उसमें प्रकाश अधिक रहता है तो वे बोलेंगे— क्या सारे जुगनुओंका प्रकाश एकत्र करें तो उसके बराबर होगा? हमने कहा नहीं, फिर बोला कि यदि दियासलाईका प्रकाश करें तो उसके बराबर हो जायगा। आखिरमें वह बोला कि इस पहाड़को जलावें तो प्रकाश उसके बराबर हो जायगा? अभीतक वह सूर्यको झूठ मानता है, किन्तु जब उसको सूर्यके प्रकाशमें लाये तो वह मुग्ध हो गया, पहले तो वह जुगनूको ही श्रेष्ठ मानता था। इसी प्रकार हम जुगनूके प्रकाशके समान सुख देनेवाले भोगोंको ही सर्वश्रेष्ठ मान बैठे हैं इसीलिये उस पूर्ण सुखका कुछ भी अनुभव नहीं होता,

किंतु महापुरुष ही हैं जो हमको ज्ञानमें ले जाते हैं। महापुरुष भी कोई एक ही होता है। भगवान् कहते हैं—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७। ३)

हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।

हजारोंमें कोई एक ही ऐसा है और जो है उनको हम पहचान नहीं सकते। उन्हें श्रद्धासे, प्रेमसे पहचान सकते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४। ३४)

तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंसे, भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा और निष्कपटभावसे किये हुए प्रश्नद्वारा उस ज्ञानको जान, वे मर्मको जाननेवाले ज्ञानीजन तुझे उस ज्ञानका उपदेश करेंगे।

कठोपनिषद्में कहा है— **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**

प्रश्न—क्या महात्मालोग सेवा-प्रणाम चाहते हैं?

उत्तर—नहीं, ऐसा भाव उनके प्रति श्रद्धा और प्रेमसे होता है। बछड़ा प्यारसे जाता है तो गाय उसे दूध पिलाती है और यदि काटता है तो वही गाय उसे लात मारती है। यह बात ऐसी है कि श्रद्धासे मिलती है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

हे अर्जुन! जितेन्द्रिय, तत्पर हुआ, श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको

प्राप्त होता है। ज्ञानको प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न—क्या करें? ऐसे पुरुष मिलते नहीं, मिलें तो पहचाने नहीं जाते, कोई उपाय बताइये।

उत्तर—हाँ इसका ऐसा उपाय है। महापुरुषोंका लिपिबद्ध उपदेश पढ़ें; वह इसमें सहायक हो सकता है।

प्रश्न—संसारमें मोह करते हैं, यह कैसे छूटे?

उत्तर—प्रभुसे प्रार्थना करें कि हमारा मोह छुड़ा दें। सत्संगसे भी मोह छूटता है। दूसरा उपाय है प्रभुके सामने खूब रोना, इससे प्रभुको दया आ जाती है।

प्रश्न—अब हम प्रभुके पास कहाँ जायँ?

उत्तर—वह प्रभु सर्वत्र हैं—

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है। क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।

हमारे दो हाथ हैं, प्रभुके हाथ सब ओर हैं।

हमारे दो आँख हैं, प्रभुकी आँख सब ओर है।

हमारे दो कान हैं प्रभुके कान सब ओर हैं।

सब जगह प्रभु-ही-प्रभु भरे हैं और कुछ भी नहीं है।

सब जगह कान कैसे होते हैं? वह इस प्रकार कि जहाँ कोई नहीं है तो भी वहाँ प्रभु हैं और वह सबकी सुनते हैं। अन्य सब जीवोंके हाथ-पैर प्रभुके मान लें, वह इस प्रकार सब ओर हाथ-

पैरवाला है। जैसे सोनेके एक टुकड़ेमें सब प्रकारके गहने हैं। कोई एक भाई विदेश जाने लगा तो स्त्रीने कहा कि मेरे लिये सोनेका कंगन लाना, लड़कीने कहा मेरे लिये सोनेकी बाली लाना, किसीने अँगूठी आदि कहा। उस पुरुषने सबकी बात सुन ली और बाजारसे पचीस तोला सोनेका एक टुकड़ा खरीद लिया। जब वह घर आया और सबने अपनी-अपनी वस्तु माँगी तो उसने प्रत्येकको वही सोनेका टुकड़ा दिखा दिया और सबने जान लिया कि हमारी वस्तु इसमें है, इससे बन जायगा। इसी प्रकार परमात्मा हैं—

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥

(गीता १३। १४)

सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाला है, परन्तु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित है तथा आसक्तिरहित और गुणोंसे अतीत हुआ भी अपनी योगमायासे सबको धारण-पोषण करनेवाला और गुणोंको भोगनेवाला है।

सारी इन्द्रियोंका भान सब जगह होता है तथा वही चराचरमें व्याप्त है—

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥

(गीता १३। १५)

वह परमात्मा चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचररूप भी वही है और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है।

इस प्रकार जब सोनेके ढेलेमें बच्चीको भी संतोष होता है कि इसमें बाली है तो जैसा सोनेका तत्त्व है, उसी प्रकार प्रभुका तत्त्व है।

अभिप्राय यह कि हम चाहे प्रभुके मस्तकपर पुष्प चढ़ावें या भोजन करायें, प्रणाम करें तो वह सब प्रभुको ही मिलेगा, इसीलिये हमें कहना चाहिये कि हे प्रभु! अब आपके सिवाय मेरा कोई नहीं है— '**त्राहि माम्**' आपकी शरण हूँ। मेरा कोई नहीं है, आपकी शरण हूँ, शरण लो, शरण लो।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २। ७)

इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला और धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपको पूछता हूँ, जो कुछ निश्चय किया हुआ कल्याणकारक साधन हो, वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मेरेको शिक्षा दीजिये।

इस प्रकार हम नित्य-प्रति रोते हैं, किन्तु प्रभु देखते हैं कि अभी मनसे नहीं रोता, जैसे पुत्र झूठा ऐं-ऐं करता है तो माता दया नहीं करती। वह प्रभु तो अंतर्यामी है। हम रोयें और वह न मिले भला कैसे सम्भव है। जब प्रभु देखते हैं कि अब सच्चा रोता है तो दर्शन देते हैं।

प्रश्न—हम रोयें कैसे? संसारमें कभी-कभी दुःख मालूम पड़ता है, तब रोते हैं, क्या करें?

उत्तर—भाई अब नहीं रोओगे तो फिर कब रोओगे? देखो! अभी तो थोड़ा ही रोना पड़ेगा जबकि बादमें अधिक रोना पड़ेगा।

प्रश्न—कोई युक्ति या प्रमाण ऐसा हो कि केवल भगवान्‌में प्रेम हो?

उत्तर—प्रमाण चाहनेवालेको लौकिकसुख और भगवत्सुखकी

तुलना करनी चाहिये। जब आपको ऐसा लगे कि लौकिकसुख अल्प है, भगवत्सुख अनन्त है। इस प्रकार सोचते ही मालूम होनेपर लौकिकसुखके प्रति उपरामता होती है एवं संसारी सुख भी दुःखरूप है।

प्रश्न—सत्संग करनेपर भी वह सुख क्यों नहीं मिलता?

उत्तर—जब उस भगवत्सुखकी प्राप्ति होती है तो यह लौकिकसुख दुःखरूप हो जाता है। जैसे सूर्यके सामने जुगनू। जिस प्रकार अँधेरी रात्रिमें तारे बड़े सुंदर लगते हैं, एक-से-एक चमकीले होते हैं, किंतु जब चन्द्रमाका प्रकाश होता है तो उस चाँदनीमें उन तारोंकी चमक नष्ट हो जाती है। यदि सब तारोंका प्रकाश एकत्र करें तो भी चाँदनीके समान नहीं होगा और जब प्रातःकाल सूर्योदय होता है तो चाँदनी भी लुप्त हो जाती है, फिर तारोंकी तो बात ही क्या है? सूर्यके सामने तारे नहीं रहते। इसी प्रकार भगवान्‌के सामने पाप नहीं रहते। तारे रात्रिमें ही दीखते हैं, दिनमें नहीं। तारे विषय हैं और चन्द्रमा वैराग्य है तथा सूर्य प्रभुका यथार्थ ज्ञान है। प्रभुका आनन्दस्वरूप ही सर्वत्र है। साक्षात् प्रभुका स्वरूप प्राप्त होनेपर सब पाप दब जाते हैं। वैराग्यरूपी चन्द्रमासे विषयरूपी तारे फीके पड़ जाते हैं। अँधेरी (अज्ञान) रात्रिमें ही तारे सुहावने सुखरूप प्रतीत होते हैं, चाँदनी (वैराग्य)-में तारे फीके पड़ जाते हैं और सूर्योदय (प्रभुके प्राप्त) होनेपर तो तारोंका नामोनिशान भी नहीं रहता। वैराग्यवान् पुरुषोंके संगसे वैराग्य होता है और चोरके संगसे चोरी और व्यापारीके साथ रहनेसे उसी प्रकारकी बुद्धि होगी। भोगोंके संगसे वैराग्य नहीं मिलेगा। भक्तिसे आनन्द होता है। प्रभुसे प्रार्थना

करनेपर वे असम्भवको भी संभव करते हैं। कहीं बिना वृक्षके पहले फल मिल सकता है? इसीलिये भक्ति (वृक्ष)-से आनन्द (फल) मिलेगा, अपार आनन्द मिलेगा।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

(गीता ६। २१)

इन्द्रियोंसे अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिवाला ग्रहण करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित हुआ वह योगी भगवत्स्वरूपसे चलायमान नहीं होता है।

वह अनन्त सुखको प्राप्त होता है बुद्धिके द्वारा ही अतीन्द्रिय है।

जैसे प्रह्लाद आगमें भी आनन्दका अनुभव करता था। एक आदमीको एक दूकानपर एक लाखकी आय हुई और दूसरीपर दो हजारकी तो वह दो हजारको भी नहीं छोड़ेगा, क्योंकि लोभ है। किन्तु जब उसे पता लगेगा कि दो हजारका काम सँभालनेमें एक लाख भी चले जायँगे तो वह दो हजारको छोड़ देगा। कबीरदासजी कहते हैं—

कबिरा मन तो एक है भावे तहाँ लगाय।
भावे हरिकी भक्ति कर भावे बिषय लगाय॥

मन तो एक ही है या तो उससे भजन ही कर लो या भोग ही भोगो।

प्रश्न—क्या दोनों एक साथ नहीं होंगे?

उत्तर—हाँ! राजा जनकके समान होनेपर दोनों एक ही मनसे होते हैं। इसी प्रकार राजा अम्बरीषने भी किया। परन्तु बात यह थी कि वे राजा होते हुए भी राज्य नहीं भोगते थे। जैसे सर्पका

विष निकालकर उसको भले ही गलेमें डाल लो, कुछ असर नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार जनक, अम्बरीष आदिने संसाररूपी सर्पके दाँत तोड़ दिये थे, इसीलिये भोग उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

(गीता २। ६४)

परन्तु स्वाधीन अन्तःकरणवाला पुरुष राग-द्वेषसे रहित अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको भोगता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नता अर्थात् स्वच्छताको प्राप्त होता है।

राग-द्वेषसे रहित महान् पुरुष जो विषयोंमें रमते हैं विषय उनको नहीं सताते।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति॥

(गीता ४। २६)

और अन्य योगीजन श्रोत्रादिक सब इन्द्रियोंको संयम अर्थात् स्वाधीनतारूप अग्निमें हवन करते हैं, अर्थात् इन्द्रियोंको विषयोंसे रोककर अपने वशमें कर लेते हैं और दूसरे योगीलोग शब्दादिक विषयोंको इन्द्रियरूप अग्निमें हवन करते हैं, अर्थात् राग-द्वेषरहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको ग्रहण करते हुए भी भस्मरूप करते हैं।

व्यवहार करते-करते आहुति देते हैं। जैसे अग्निमें दी हुई आहुति भस्म हो जाती है और भस्मीका कुछ नहीं होता, ऐसे ही उन योगी पुरुषोंका भोजनका प्रयोजन मात्र शरीर-निर्वाहके लिये होता है स्वादके लिये नहीं, उनके भीतर समता ही अमृत है और यदि विषमता हो तो वह विषतुल्य है।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

(गीता १२। १९)

जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला और मननशील है, अर्थात् ईश्वरके स्वरूपका निरन्तर मनन करनेवाला है एवं जिस किस प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही संतुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममतासे रहित है, वह स्थिर बुद्धिवाला, भक्तिमान् पुरुष मेरेको प्रिय है।

निन्दा-स्तुतिमें समान है, मान-अपमानमें सम है। राग-द्वेष-रहित होना ही अमृत है। संसारी लोग राग-द्वेषसे युक्त भोग भोग रहे हैं और वे लोग राग-द्वेषसे रहित भोगते थे। जिसका किसी पदार्थमें मोह नहीं है, वही उत्तम पुरुष है—

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता २। ५७)

जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ तथा अशुभ वस्तुओंको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है। जनक, अश्वपति आदि संसारका आस्वादन नहीं लेते थे। जो आत्मामें रत है उसको परम शान्ति है।

एक समयमें एक ही वस्तु, एक ही विषय प्राप्त होता है, जब साधकको यह मालूम हुआ कि प्रभुप्राप्तिमें विषय बाधक हैं, दुःखरूप हैं तो वह उन्हें शीघ्र त्याग देता है, उनसे घृणा करने लगता है। उसे शास्त्रमें पढ़ी हुई, महापुरुषोंद्वारा सुनी हुई बात सीधी मालूम पड़ती है। वैराग्यका आनन्द अति उत्तम आनन्द है। त्रिलोकीका आनन्द भी उसके सामने तुच्छ प्रतीत होता है।

वैरागीको देखते ही हमारा मस्तक उनके चरणोंमें झुक जाता है। यदि हम भोगीको देखेंगे तो हमारा मस्तक नहीं झुकेगा, चाहे वह राजा ही क्यों न हो। संसारमें जो सुख है वह क्षणिक है। यदि किसी साधुमें वैराग्य नहीं हुआ तो वह किस कामका। वर्ण, आश्रम, धर्म, आचार उत्तम होनेपर भी बिना वैराग्य वह किसी कामका नहीं है।

किसी गृहस्थने एक साधुसे कहा—महाराज मेरा घर पवित्र कीजिये। साधु बोले, भाई रसोई क्या बनी है? गृहस्थ बोला—हलवा-पूड़ी है महाराज। साधु बोले—आज तो खीर-पूड़ी होनी चाहिये। उसने कहा महाराज हमारी शक्ति नहीं है रोज इस प्रकार खीर बनानेकी। तब साधु बोले भाई हम तो सूखी रोटी खा लेंगे। तब गृहस्थ बोला—मैं रोज-रोज बना दूँगा। यानि खीरके लिये श्रद्धा नहीं है और रोटीके लिये रोज-रोज श्रद्धा हो गयी।

दूसरा बोला महाराज भोजन कीजिये तो महाराज बोले दक्षिणा क्या है? वह बोला साधु दक्षिणा नहीं लेते इसलिये मैं यह वस्त्र लाया हूँ। साधु बोले यह नहीं, कम्बल हो तो ठीक रहे सामने ठंड आ रही है तो अश्रद्धा हो जाती है।

बात यह है कि त्याग ही सर्वोत्तम है। त्याग दो प्रकारके होते हैं—हठपूर्वक एवं वैराग्यसे। हठके त्यागमें मान-बड़ाई भी मिलती है और सुख भी। विरक्तके त्यागमें तो वैराग्यसुख विलक्षण ही है। संसारके जो पदार्थ उत्तम दीखते हैं वैरागीको उनसे घृणा होती है। संसारी जिसको त्याग देते हैं वैरागीको वही प्यारे लगते हैं। जिस वस्तुपर हमारा प्रेम होता है, वैरागीको वह अंगारेके समान भासता है। यदि किसीने पुष्पकी माला वैरागीको डाली तो वह प्रसन्न ही नहीं होता, अपितु अपमान समझता है।

ऐसे पुरुषको ही वैरागी समझो। केवल सिर मुंडा लेनेसे ही वैरागी नहीं होते, किन्तु ऐसेकी भी निंदा नहीं करनी चाहिये। असल बात तो यह है कि रागके अभावका नाम वैराग्य है। मोहका नाश होना ही वैराग्य है और वैराग्य ही आनन्द है, वैराग्य ही अन्तिम सीढ़ी है, तीव्र वैराग्य ही भगवत्प्राप्ति कराता है।

प्रश्न—वैराग्य कैसे हो? सुनते तो हैं समझमें भी आता है किन्तु होता नहीं?

उत्तर—विश्वास करके विवेकद्वारा संसारीवृत्ति हटाओ, स्वार्थ-रहित सेवा करनेसे, स्वार्थरहित भक्ति करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरण शुद्ध होनेपर वैराग्य स्वतः हो जाता है।

वैराग्यवान् पुरुषोंके संगसे भी वैराग्य होता है। इसके बाद उपरामता होती है और तभी ध्यान होता है। एक वैराग्य है तो और किसी युक्तिकी आवश्यकता नहीं। हजार उपाय कीजिये, बिना वैराग्य मुक्ति नहीं होती। बिना वैराग्य साधन भी नहीं होता। जिस प्रकार बने वैराग्यको तो प्राण देनेपर भी नहीं छोड़ना चाहिये। धन, स्त्री, प्राणोंके त्याग और त्रिलोकीके त्यागसे भी वैराग्य मिले तो ग्राह्य है।

सार बात यह है कि प्रश्न था संसारकी आसक्ति राग कैसे छूटे। वैराग्यसे ही संसार छूटता है। प्रभुके सामने रोनेसे कि हे प्रभु मेरा प्रेम आपमें हो। भजन-ध्यानसे अन्तःकरण पवित्र होकर वैराग्य होता है। निष्कामसेवासे भी वैराग्य होता है। संसारमें दुःख-दोष देखनेसे भी वैराग्य होता है और वैराग्यसे प्रभुमें प्रेम होता है।

निष्कामभावकी आवश्यकता

ध्यान नहीं लगे तो यह हमारी कमी है। प्रभुकी दया तो है ही, इसीलिये ध्यान होना भी चाहिये, अब प्रातःकाल प्रयत्न करेंगे तो अवश्य होगा। क्रोध, विघ्न, दोष बाधा डालते हैं। ये बाधक अवश्य हैं, जरा-सा होनेसे ध्यान नहीं होता है। ऐसा मत समझो कि ध्यान क्रोध कम होनेपर ही लगेगा। नहीं भी लगे। अनेकों विघ्नोंके बीच यह भी एक विघ्न है। क्रोध छोड़नेसे छूटता है या कम होता है। अपनेमें यह भावना ही नहीं होनी चाहिये कि हमारेमें क्रोध नहीं है। यदि क्रोध नहीं आया तो यह मत समझो कि हम अक्रोधी हैं।

एक विरक्त श्रेष्ठ ब्रह्मचारी था, लोगोंमें ख्याति थी कि वह ब्रह्मचारी है। एक वेश्याने भी सुना तो वह बोली मैं उसका ब्रह्मचर्य बिगाड़ूँगी।

एक दिन उस वेश्याने पूछा कि महाराज क्या आपने कामको जीत लिया है? ब्रह्मचारी बोला—लोग कहते हैं, मैं नहीं कहता, क्या भरोसा। कुछ दिन बाद वह वेश्या फिर बोली कि आपकी वृत्ति तो अच्छी है, अब कह दो कि कामको जीत लिया। ब्रह्मचारी बोला—शरीर रहते तो मैं नहीं कह सकता। मौका आयेगा तो कह दूँगा। एक दिन ब्रह्मचारीकी मृत्यु हो गयी और ब्रह्माण्डसे प्राण निकल गये। वेश्याने पुनः पूछा क्या कामको जीत लिया, मेरा उत्तर दो। तब वह आकाशसे बोला कि अब कहूँगा कि मैंने कामको जीत लिया है।

मनुष्यको चाहिये कि लोग कुछ भी कहें उधर ध्यान न दे।

लोग मुझे योगी, भक्त आदि कहते हैं, यदि मैं अपनेको मान लूँ तो समझो मैं कुछ नहीं हूँ। प्रभुप्राप्तिके बाद मान लें तो क्या आपत्ति है? प्रभुकी प्राप्ति होनेके उपरान्त वहाँ कोई माननेवाला रहता ही नहीं। सिद्धान्त यही है कि मानना नहीं चाहिये। मैं लघुशंका करके आया, लोग मेरे लिये हाथ धोनेके लिये पानी ले आये। मैं अपने लिये क्या कहूँ। मुझको यह अनुकूल नहीं पड़ता, मैं सेवा क्यों कराऊँ। मैं कहता हूँ जैसे तुम मेरे लिये तैयार रहते हो, इसी प्रकार यदि तुम सबकी सेवा करनेको तैयार हो जाओ तो तुम्हारा कल्याण है। एककी सेवासे जो लाभ होता है, सौकी सेवासे अधिक होगा। इसलिये परमात्मप्राप्त पुरुषको सबकी अभेदरूपसे सेवा करनी चाहिये। सेवाका क्रम तो सबको मालूम है ही, जैसा मेरे लिये वैसा सबके लिये। यदि कहो कि तुम्हारी सेवा महापुरुष समझकर करते हैं। मैं महापुरुष नहीं हूँ, मैं तो साधारण मनुष्य हूँ। यदि मैं महापुरुष होऊँ तो मेरी स्थिति ऐसी क्यों होगी, यदि मानो तो एक ही शरीरमें मानना मूर्खता है।

महापुरुष सर्वत्र हैं, अतः सबकी सेवा करनी चाहिये। व्यक्तिगत सेवासे अल्प फल है और अधिकसे अधिक। सेवाका आवश्यकीय कार्य हो तो सत्संग छोड़ दो। भगवान्‌ने कहा है—'**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः**' सारे भूतोंके हितमें रत होना ही गीताकी आज्ञाका पालन करना है। एक तो हम नित्य सुनें और करें नहीं और दूसरा सुने और करे तो करनेवाला उत्तम है। अनुकूल क्रिया करना ही सत्संग है और सत्संगकी शिक्षा पालन करना है।

जो अपने शरीरकी सेवा चाहता है, अपना चित्र बनवाता है और चाहता है कि मरनेके बाद मेरा मान हो, मेरी जीवनीका प्रचार

हो, मेरी कीर्ति हो—यह मूढ़ता है। इसमें परमात्माकी प्राप्ति नहीं है। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा—तीनों ही कलंक लगानेवाले हैं। परमात्माके तत्त्वका ज्ञान होनेपर इनका निशान भी नहीं रहता। संसारमें जो अपने नाम और रूपको पुजवाता है, मरनेके बाद प्रतिष्ठा चाहता है, वह अज्ञानी है। जब वह प्रभुको प्राप्त हो गया, तब वह उनमें एकीभावसे तन्मय हो जाता है, प्रभुसे अभिन्न रहता है। वह जीवित रहते हुए या मरनेके उपरान्त अपनेको कैसे पुजवा सकता है? यदि लोकोपकारके लिये ऐसा करता है तो भी उत्तम नहीं। उसके अंदर ऐसी बात नहीं होती कि मेरे नामसे, गुणकी कीर्तिसे लोककल्याण होगा। यह उसकी भूल है। इसमें भूल यह कि वह उद्धारक हो गया, यह ठीक नहीं है।

महापुरुष शिक्षा देते हैं, किन्तु अपनेको पूज्य मानकर शिक्षा नहीं देते। यदि ऐसा करें तो आपत्ति यह है कि नाम-रूपसे कल्याण हो तो क्या नाम-रूप दूसरा नहीं है, जिसकी भक्तिसे अधिक लाभ होता हो। जितने महापुरुष हैं वे प्रभुकी आत्मा हैं, उनका ध्यान लाभदायक है, फिर अपना नाम क्यों करवाना। यदि अपनेको बड़ा माने तो भी ऐसी चेष्टा करनी चाहिये ताकि दूसरोंपर बुरा प्रभाव न पड़े। जो परमात्माको प्राप्त होता है वह स्वतः परमात्मा ही है। राम-कृष्णकी पूजा उसीकी है। फिर भला उसको क्या आवश्यकता है कि अपने आपको पुजवाये। उसको उनकी पूजा अपनी ही माननी चाहिये। कोई भी अपने नाम, रूप, जीवनीका प्रचार करनेवाला है तो ऐसा अज्ञानसे ही है। मरनेके बाद भी जीवनीका प्रचार नहीं चाहना चाहिये। किंतु पूर्वमें जो महापुरुष हो गये हैं उनका आदर्श उत्तम पुरुष चलाते हैं।

माता-बहनोंके लिये चार बात है—

१-यह तो सबके लिये है कि संसारसे प्रेम हटाकर प्रभुमें प्रेम करे, सुहागिन या विधवा कोई भी हो।

संसारसे जो प्रेम है वह प्रभुमें करना चाहिये, क्योंकि संसारी पदार्थ क्षणिक हैं। प्रभु नित्य हैं, उनका संयोग भी नित्य है। संसारी भोगोंमें सुखकी कल्पना करना भी दुःखदायी है, स्त्रियोंको सोचना चाहिये कि गहना जो शरीरपर पहना जाता है, वह दुःखदायी है, भाररूप है, शरीरका गोरापन, सुन्दरता आदि भी हानिकारक है और पुत्रादि भी दुःखके कारण हैं। देह भी दुःखका कारण है। प्रभुका स्मरण अनंत है। इसलिये सबसे प्रेम हटाकर प्रभुमें प्रेम करना चाहिये।

२-प्रभु सर्वत्र हैं इसलिये सबसे प्रेम करो और जो अपना अपकार करे उसका उपकार करो, गाली देनेवालोंको क्षमा करो, माताओ! बहनो! यदि तुम्हें कोई कलंकित कहे तो समझो यह हमें उपदेश देता है, उसे बुरा मत मानो। उसकी बात सुनकर और जिस बातकी अपनेमें कमी देखो उसका सुधार करना चाहिये और यदि ठीक हो तो कोई बात नहीं।

३-प्रेम कैसे हो? प्रेमका उपाय है सेवा करना, सबका हित करना। सेवासे प्रेम बढ़ता है, क्योंकि माताओंमें वात्सल्य रहता है। पतिकी और बड़ोंकी प्रेमसे, श्रद्धासे सेवा करनी चाहिये। ऐसी सेवासे प्रेम बढ़ेगा, यही प्रेम प्रभुप्रेम होगा, यही सबकी सेवा है।

माताओं-बहनोंकी वाणीके साथ अन्तःकरणमें कामना रहती है। पुत्रकी, धनकी इच्छा रहती है, बीमारी नष्ट होनेकी कामना रहती है। कामना दोष है, उसे निकालनेसे कल्याण होता है।

सबके हितमें रत रहना चाहिये, यदि अंत:करणमें सकामभाव है तो उसकी सिद्धि नहीं होती, होगी भी तो विलम्बसे होगी।

माताओंको किसी भी देवतासे कामना नहीं करनी चाहिये। जो सबसे बड़ा है, उससे करनी चाहिये। अभ्यासवश यदि हो जाय तो देखो लीद खानेकी वस्तु नहीं है, त्यागनेकी है। इसी प्रकार किसीसे कामना करनी ही नहीं चाहिये। कामनाको लीदके समान त्याग देना चाहिये।

प्रभुसे उस बातकी कामना करनी चाहिये, ताकि फिर कामना करनी ही न पड़े। ऐसी चीज माँगो कि रोज-रोज माँगना ही न पड़े। यदि प्रभु स्वत: देते हैं तो अच्छी बात करते हैं, किन्तु यह भाव करना कि प्रभु देंगे यह भी वासना ही है, यह भी नहीं होना चाहिये और प्रभु दें या न दें, ऐसा भाव होना भी सूक्ष्म कामना है।

प्रभु क्या करेंगे ऐसा विचार ही मत करो, हम उनके कर्तव्यका खयाल क्यों करें?

भक्त प्रह्लादको भगवान्‌ने कहा माँगो। तब वह बोले कि मैं भक्ति करूँ और आप वर दें यह तो वणिक्‌बुद्धि हुई, मैं नहीं चाहता, यह तो स्वार्थ है। यह सुनकर प्रभु प्रसन्न हो गये। प्रह्लाद कहते हैं प्रभु मुझे माँगनेकी इच्छा होनेसे ही आपने कहा कि माँगो, अत: मैं यही माँगता हूँ कि मेरे अंतरमें माँगनेकी इच्छा ही न होवे। ऐसा भाव उत्तम है। यह भाव शीघ्र प्रभुप्राप्ति कराता है, किंतु यह भी कामना है। शीघ्र हो या विलम्बसे हो, हमें क्या आवश्यकता है, बस, यही निष्कामभाव है।

४-घरमें माताओं-बहनोंमें झगड़ा हो जाता है। कुशब्द बोलनेसे क्रोध होता है, गाली बकनेसे मार-पीट भी हो जाती है।

प्रमाद हो जाता है, आत्मघाततक भी हो जाता है, क्रोधमें कोई नदी, कूआँ-तालाबमें कूदकर आत्महत्या कर बैठती है इत्यादि अनुचित व्यवहार नरकका कारण है। अधिकांश झगड़ा वस्तु, रुपये, गहना या काम-धंधा आदिको लेकर हो जाता है, झगड़ा करनेवाले दोनोंके परस्पर समझनेसे यह रोग मिट सकता है। यह रोग जन्म-मृत्युका कारण है। इस रोगकी जड़ सेवासे कटती है।

माताओं-बहनोंको घरमें कठिन कार्य आनेपर सदैव आगे रहना चाहिये। यदि बलिदानका मौका आये तो पहला नम्बर अपना रखे। शरीरसे जितनी सेवा हो सके उतना ही कल्याण है। ऐसा होनेसे एक मिनट भी खाली नहीं जायगा। जैसे कोई जंगल या खेत ठेकेपर लिया हो और उसमें खोदते-खोदते रत्न निकले, सरकारने निकालनेका आदेश दे दिया, किंतु ठेकेकी अवधि पूरी होनेके बाद रत्न निकाल नहीं सकते। यह शरीर ठेकेका खेत है। इसमें मिट्टी, पत्थर, रत्न सब भरे हुए हैं। वही पुरुष बुद्धिमान् है जो इसमें यंत्रद्वारा रत्न ही निकालता है। इसका यन्त्र है सत्संग। मृत्यु (ठेके)-के बाद कुछ भी नहीं हो सकेगा।

इसमें रत्न है शरीरद्वारा भजन-ध्यान करना, वैराग्यकी शिक्षा ग्रहण करना, यही रत्न है और उत्तम कार्य करना ही सुवर्ण है। इसके सिवाय दूसरा काम करना तो मिट्टी-कोयला है।

जो शरीररूपी खेतको सजाता है वह हानिमें है और रत्न सुवर्ण निकालता है वह लाभमें है। गीताजीमें कहा है—'**इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रम्**' मनुष्य-शरीर ही खेत है '**इदम्**' शरीर है और दूसरी योनियाँ ऊसर भूमि हैं। इसी शरीर (खेत)-से रत्न,

सोना इत्यादि सब उत्पन्न होता है। खेतमें हल चलाना पड़ता है और बोनेवाला आत्मा है, खेत शरीर है।

बीजके लिये उत्तम कार्य करना, भला कार्य करना चाहिये। शुभाशुभ कर्मरूपी बीज सूक्ष्म शरीरके मनमें अटकता है और समय पाकर फल देता है। खेतके हल, बैल इन्द्रियाँ हैं। ऐसे उत्तम खेतको पाकर भी हम भूखे रहें, आलस्यवश भूखे मरें, हमारा जन्म-मरण हो तो इससे अधिक मूर्खता और क्या हो सकती है। जैसे किसी राजाने दयावश बोनेके लिये खेत दे दिया और उसे वह बोये नहीं या आलस्यवश बबूल बो दे और कष्ट पाये तो उसीकी मूर्खता है। यह बबूलका काँटा पापकर्म है। भला इनमें किस प्रकार निर्वाह हो सकता है। शरीरसे सदैव उत्तम कार्य ही ले, आरामतलब नहीं बनना चाहिये। अपने पास जो भी वस्तु हो, रुपया, गहना, कपड़ा, शरीर इनको देकर दूसरोंकी सेवा करनी चाहिये। तन, मन, धन, जनसे सेवा करनी चाहिये। दूसरोंको आराम पहुँचाना चाहिये, अच्छी वस्तु दूसरोंकी सेवामें लगाये और दूसरोंकी आपत्ति घरमें रख ले। पूर्वमें भी माता-बहनें इसी प्रकार रहती थीं। विधवा माताओं-बहनोंको ईश्वरमें प्रेम, ईश्वरका स्मरण और सब समय वैराग्य और ध्यानमें बिताना चाहिये और सुहागन माता-बहनें पतिसेवामें, धर्ममें रत रहें। इस प्रकारकी विधवा माता-बहनें पूजनीय होती हैं, उनका सत्कार होता है, मान होता है।

किंतु यह आकांक्षा न रखें कि लोग हमें पूजें। ऐसी कामना छोड़ देनी चाहिये। सेवाके लिये प्रभु कहते हैं—**'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर'** प्रभुका चिन्तन ही उत्तम है।

आज्ञापालन, पतिव्रतधर्म पालन उत्तम है, किन्तु कामना नहीं करनी चाहिये। आपसी विरोध मूलसहित नाश करता है। इस विरोधको तो मृत्यु समझकर त्याग देना चाहिये। यानि विरोध ही मृत्यु है।

हम तीर्थमें आये हैं, यहाँ तीन प्रयोजन सिद्ध होते हैं।

संसारमें चार पदार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

किंतु तीर्थमें तीन वस्तु—धर्म, काम, मोक्ष मिलता है, यहाँ अर्थ (धन) नहीं मिलता। धर्म और मोक्ष तो सात्त्विक हैं और कामना राजसी है। धर्म, मोक्ष निष्कामभावसे करना चाहिये, किंतु केवल इसीमें मुक्ति नहीं है। उसका पालन करना और पालन करके उपासना करना और रहस्यको समझनेसे फल मिलता है। तीर्थमें पाप नहीं करना चाहिये, यहाँ तो भजन, ध्यान, सत्संगसे लाभ होता है। तीर्थमें पापका फल कई गुना पाप है, गंगामें स्नान करना लाभदायक है। महापुरुषकी सेवा करना धर्म है और नहीं करना पाप है। यह गंगाजीका उत्तम तट है और तपोभूमि है, यहाँ संयमसे रहना तप है। घरमें तो नाना प्रकारके भोजन करते हैं, किंतु यहाँ तो थोड़ा और सात्त्विक भोजन करना चाहिये। मिर्च, खटाई, अमचूर आदि राजसी आहार हैं, उत्तेजक हैं। खटाईसे ब्रह्मचर्यका नाश होता है। मिर्चसे क्रोध होता है। साधारण दाल-फलका दो ही वस्तु उत्तम हैं। बस, दो ही वस्तु खानी चाहिये, एक लगानेकी एक खानेकी, साथमें दूध यदि मिल जाय तो हानि नहीं किंतु सबके लिये त्याग ही उत्तम है। पहननेको भी दो ही वस्त्र हों तो अच्छा है, धोती (अधोवस्त्र) और उत्तरीय। गृहस्थ यदि एक-दो अधिक भी रखें तो हानि

नहीं है। बोलनेका संयम करे, जहाँतक हो सके परमार्थकी बात करे, फालतू बातको प्लेग समझे।

नेत्रसे कुदृष्टि नहीं करे, यदि हो तो प्रभुको याद करे, ऐसा करनेसे देखनेका दोष दूर होगा। मानसिक दोष होवे तो उपवास करना चाहिये। क्रोध नहीं करना चाहिये, ज्ञान तथा भक्ति करनी चाहिये। पूर्वाभ्याससे यदि क्रोध हो जाय तो प्रभुसे प्रार्थना करे हे प्रभु! दीनबन्धु! क्षमा करो और अपना भजन देते रहो, इस प्रकार काम-क्रोध नहीं रहेंगे। प्रभुके स्मरणसे क्रोधका नाश हो जाता है। कर्तव्य-पालन करना चाहिये। यहाँ तीर्थमें आकर सदा सत्य बोले, यदि झूठ बोला जाय तो पश्चात्ताप करे, अधिक झूठ बोलनेपर उपवास करे। सर्वोत्तम साधन यह है कि प्रभुको भूले नहीं, भारी गड्ढेमें गिरनेपर भी नहीं भूले, पापसे खूब डरे और भजनमें मन लगाये।

श्रद्धाका स्वरूप शास्त्र, महात्मा, गुरु, वेद, ईश्वर, परलोक, इनमें विश्वास, पूज्यभाव, आदर, भक्तिका नाम श्रद्धा है। प्रत्यक्षसे बढ़कर श्रद्धा होना परम श्रद्धा है। आप कहीं किसी स्थानपर नदीके किनारे नाव देखकर आये हैं, हमने नहीं देखा तो भी आपके बताये अनुसार विश्वास करना—इसका नाम विश्वास है, श्रद्धा है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

श्रद्धाके कई भेद हैं जैसे एक सफेद घड़ी है, श्रद्धा होगी तो

वह श्रद्धेयके कहनेपर चाँदीकी दीखने लग जायगी, यदि कहेंगे कि पीली है तो सोनेकी दीखने लग जायगी।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(गीता १७। ३)

हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्त:करणके अनुरूप होती है तथा यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है, वैसा ही उसका स्वरूप है।

श्रद्धावान् ही ज्ञानी है और ज्ञानीको ही परमानन्दकी प्राप्ति होती है।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥

(गीता ४। ३१)

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञोंके परिणामरूप ज्ञानामृतको भोगनेवाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं और यज्ञरहित पुरुषको यह मनुष्यलोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा।

केवल श्रद्धा हो जाय तो कल्याण होनेमें कुछ भी विलम्ब नहीं है।

वक्ता, देश, शब्द सब एक ही हैं, किन्तु जिनकी जैसी श्रद्धा होती है वैसा समझकर लाभ उठाते हैं, कोई तो पूज्य मानता है। कोई कहता है पाखण्डी है, तीसरा कहता है यह तो इसकी जीविका है, धन चाहता है, चौथा बोलता है जीविकाके लिये

कोई कथा नहीं कहा करते, यह तो मान चाहता है कि सब हमको मानें। पाँचवाँ कहता है अरे भाई! यह तो सज्जन पुरुष हैं, ये तो अभ्यासके लिये ऐसा करते हैं कि इस निमित्तसे इनका कल्याण हो जायगा। छठा बोलता है यह तो कल्याणरूप ही हैं, इनका कल्याण तो हो गया है, ये तो अब कालक्षेप करते हैं। सातवाँ कहता है अरे भाई ये तो लोगोंका उद्धार करते हैं। इसी प्रकार सब अपनी-अपनी श्रद्धाके अनुसार कहते, सुनते हैं। प्रत्येककी भावना पृथक्-पृथक् रहती है।

रामचन्द्रजीने धनुष तोड़ा तब प्रत्येकको पृथक्-पृथक् भावसे दिखे—

एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥

(रा० च० मा० १। २४२। ८)

इसी प्रकार संसार भी सबको एक-सा नहीं दीखता है। भगवान्‌ने कहा है कि महात्मालोग संसारको **वासुदेवः सर्वम्** देखते हैं, वैरागीको दुःखरूप, भोगीको संसार भोगमय दीखता है। उसी प्रकार एक स्त्रीमें भी भिन्न-भिन्न दृष्टि रहती है। यदि हम संसारको आनन्दमय देखने लगें तो हमको अणु-अणुमें नारायण ही दीखेंगे। जैसे गोपियोंको, प्रह्लादको सर्वत्र ही हरि दीखते थे, उसी प्रकार हमको भी देखना चाहिये।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा॥

(गीता १३। ३०)

जिस क्षण यह पुरुष भूतोंके पृथक्-पृथक् भावको एक परमात्मामें ही स्थित तथा उस परमात्मासे ही सम्पूर्ण भूतोंका

विस्तार देखता है, उसी क्षण वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

जिस प्रकार बलदेवजीको गायमें, बछड़ेमें, लाठीमें कृष्ण-ही-कृष्ण दीखते थे, उसी प्रकार हमको भी विश्वास हो जायगा तो हमको जिस रूपमें आज संसार दीख रहा है, उससे विपरीत प्रभुमय दीखने लगेगा। हम रेलमें चलते-चलते देखते हैं कि सूर्य पश्चिमसे निकल रहा है, परन्तु अपने स्थानपर जानेसे पूर्ण ज्ञान, यथार्थ ज्ञान हो जाता है। यह इन्द्रियोंका विकार है। क्षण-क्षणमें इनका स्वभाव बदलता रहता है, इसलिये इनका कहना नहीं मानना चाहिये। इन विकारोंको विचारद्वारा हटा दो और उसी स्थानपर परमात्माको देखो। नेत्रदोषसे ही आकाशमें जाला प्रतीत होता है, वास्तवमें आकाशमें जाला नहीं है। हमको संसार धोखेसे दीख रहा है। विश्वास करो कि यहाँ परमात्मा विराजमान हैं तो परमात्मा साक्षात् दर्शन देंगे, यही परम श्रद्धा है।

तत्त्वज्ञानीके व्यवहारका वर्णन

प्रश्न—निरन्तर स्वरूपकी स्थिति रहनेपर शरीर, अन्तःकरण आदिसे दूसरा काम हो सकता है या नहीं? दूसरा काम होनेपर उतने कालके लिये स्वरूपका विस्मरण होगा कि नहीं? स्वरूपका विस्मरण भी नहीं हो एवं दूसरे काम भी यथावत् होते रहें, इसकी विधि बतायें।

उत्तर—निरन्तर भगवत्स्वरूपमें अर्थात् व्यष्टिचेतनकी समष्टि-चेतनमें एकीभावसे स्थिति रहते हुए भी अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा कर्तव्य होनेमें कोई आपत्ति नहीं पड़ती और उस कालमें भगवत्स्वरूपमें स्थिति रहते हुए पुरुषकी स्थितिमें किंचित् भी अन्तर आनेका कोई हेतु नहीं है, क्योंकि परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषका अन्तःकरणसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, केवल लोकदृष्टिसे उसके अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा सब कार्य होते हुए प्रतीत होते हैं। ये समष्टिचेतनकी सत्तासे बिना कर्तृत्व अभिमानके पूर्व अभ्याससे होते हैं।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥

(गीता ४। १९)

जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्पके होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।

प्रवचन तिथि—श्रावण कृष्ण ८, संवत् १९८०।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥

(गीता ५। १३)

हे अर्जुन! वशमें है अन्तःकरण जिसके ऐसा सांख्ययोगका आचरण करनेवाला पुरुष निःसन्देह न करता हुआ और न करवाता हुआ नवद्वारोंवाले शरीररूप घरमें सब कर्मोंको मनसे त्यागकर अर्थात् आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें स्थित रहता है।

प्रश्न—परमात्माकी प्राप्तिके बाद काम, क्रोधादि होते हैं या नहीं? यदि नहीं तो महर्षि लोमशने काकभुशुण्डिजीको शाप क्यों दिया? भगवान् शंकर कामदेवके वशमें होकर मोहिनीके पीछे भागे, अन्य भी कई उदाहरण मिलते हैं, उसका क्या उत्तर है। लोगोंका कहना है कि काम, क्रोधके रहनेमात्रसे भी स्वरूपकी स्थितिमें कोई बाधा नहीं आ सकती।

उत्तर—परमात्माकी प्राप्तिके बाद अहंकाररहित अन्तःकरणमें काम, क्रोधादि दुर्गुणोंकी उत्पत्तिका कोई हेतु नहीं रहता। महर्षि लोमशको यदि वास्तवमें क्रोध नहीं हुआ हो, केवल किसीके लाभार्थ शास्त्रानुसार बर्ताव किया हो तो कोई हानि नहीं है। परन्तु यदि वास्तवमें उन्हें क्रोध हुआ तो समझना चाहिये कि तबतक उनको परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई थी। इस विषयको लेकर ही श्रीकाकभुशुण्डिजीने कहा है—

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान॥

भगवान् विष्णु और शंकर ईश्वर हैं, उनके कर्मोंका मर्म समझना मनुष्यकी बुद्धिके बाहर है, ईश्वरकी लीलाको समझनेकी शक्ति

मनुष्यकी नहीं है। उन लोगोंका यह कथन कि काम, क्रोधादि रहनेमात्रसे ही स्वरूपकी स्थितिमें कोई बाधा नहीं आ सकती, ऐसा कहना बन नहीं सकता, क्योंकि इसके लिये कोई प्राचीन महर्षियोंके वचनोंका प्रमाण होना चाहिये। इसके विरुद्धमें तो बहुत-से प्रमाण हैं— गीता अध्याय ३ श्लोक ३२से ४३ तक और गीता अध्याय १६ श्लोक २१-२२ तथा और भी यथायोग्य स्थानोंमें देखना चाहिये।

प्रश्न—परमात्माकी प्राप्ति तो है ही, अपने आपमें स्थिति तो किसी कालमें हटी नहीं, केवल भ्रम हो गया था वह मिट गया। संसारका स्वप्न भंग हो गया, फिर जो कुछ था वही रह गया। इसलिये प्राप्ति पहले नहीं थी, बादमें साधनसे हुई यह बात भी कहते नहीं बनती।

उत्तर—परमात्माको प्राप्त हुए पुरुषका यह भाव भी नहीं रहता कि पहले मुझे अज्ञान था और अमुक साधनसे अमुक कालमें ज्ञान हुआ है। तथापि जो अज्ञानी जीव हैं उनको अपना अज्ञान नष्ट करनेके लिये साधनकी पूर्ण आवश्यकता है और जिन पुरुषोंकी अज्ञाननिद्रा नष्ट हो गयी है, संसारका स्वप्नवत् अभाव हो गया है, उनमें काम, क्रोधादि अवगुण कैसे रह सकते हैं? वर्तमानमें भी जो पुरुष निद्रासे जाग जाता है, उसका स्वप्नसे कोई सम्बन्ध रहता है क्या? स्वप्नका अभाव होनेपर भी स्वप्नके काम, क्रोधादिका अभाव नहीं होता।

प्रश्न—प्रारब्धके अनुसार फल-भोग करना ही पड़ता है। प्रारब्ध भोगे बिना नष्ट होता ही नहीं। प्रारब्धका भोग जीवन्मुक्तको भी करना पड़ता है, फिर यदि प्रारब्धका भोग करते हुए बुरा कर्म करना पड़े तो बुरा कर्म करनेका दोष किस प्रकार लगेगा?

चाहे कामना, इच्छा नहीं हो, परन्तु प्रारब्धकी प्रबलतासे पराधीनकी भाँति केवल प्रारब्ध कर्म भोगनेके लिये बुरा कर्म करना पड़े। इसमें ज्ञानकी स्थितिमें अथवा स्वरूपकी स्थितिमें क्या बाधा आती है?

उत्तर—वास्तवमें जीवन्मुक्त पुरुषके लिये कोई भी कर्म शेष नहीं रहता, क्योंकि उसकी दृष्टिमें एक परमात्माके सिवाय अन्य किसीकी सत्ता ही नहीं है। तब उसे किसी भी कर्मका भोग कैसे भोगना पड़ेगा? परन्तु शास्त्रदृष्टि और लोकदृष्टिके अनुसार उसके अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा प्रारब्धके भोग भोगे जाते हैं यही ठीक है। इसलिये मानना चाहिये कि ऐसा प्रारब्ध नहीं बन सकता जो पापकर्म किये बिना न भोगा जा सके, यदि कोई पापकर्मोंमें प्रारब्धको हेतु माने तो उसमें यह तीन आपत्ति आती है—

१-विधि-निषेधका कथन करनेवाले शास्त्र व्यर्थ होते हैं।

२-ईश्वरकी न्यायशीलतामें दोष आता है, क्योंकि जब विधाताने स्वयं ही उसके प्रारब्धमें पापकर्मका विधान नियत कर दिया, तब उसे पापका दण्ड क्यों मिलना चाहिये तथा वह युक्तियुक्त भी नहीं है कि अपराधके फलमें फिर अपराध करना ही नियत किया जाय। अतः पापका फल दुःख ही होना चाहिये न कि पापकर्म।

३-जिसके द्वारा चोरी, जारी आदि नीच कर्म बनते हैं, उस काम, क्रोधादि दुर्गुणोंसे युक्त व्यक्तिको ज्ञानी कैसे माना जा सकता है, उसको नीच ही मानना चाहिये, क्योंकि मल, विक्षेप और आवरण इन तीन दोषोंका अभाव होकर अन्तःकरण शुद्ध होनेके उपरान्त ज्ञानकी प्राप्ति होती है। फिर शुद्ध हुए अन्तःकरणमें काम, क्रोधादि मल कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? अतः यह मानना

कि परमात्माकी प्राप्ति होनेके उपरान्त भी प्रारब्ध कर्म शेष रहनेके कारण काम-क्रोधादि दुर्गुण, नीच आचरण शेष रहते हैं, सर्वथा भ्रममूलक है। काम-क्रोधादिकी उत्पत्तिका कारण आसक्ति है।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २। ६२-६३)

विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधसे अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है।

आसक्तिका सर्वथा अभाव होनेपर परमात्माकी प्राप्ति होती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

(गीता २। ५९)

इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेवाले पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुषकी तो आसक्ति भी परमात्माका साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।

जब कारणका अभाव हो गया तो कार्य किससे उत्पन्न होगा।

प्रेम, विह्वलता एवं रोनेसे शीघ्र भगवद्दर्शन

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(गीता ८।५-६)

जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।

अन्त समयमें यदि देवताका चिन्तन रहा तो उसीके लोकमें, भगवान्का रहा तो भगवान्में या अन्य जिसका चिन्तन करेगा वहीं जायगा। इसलिये हे अर्जुन! इस रीतिके अनुसार तू सदैव बुद्धिसे मेरा स्मरण और मनसे ध्यान कर, ऐसा करनेसे तू मुझको ही प्राप्त होगा।

हम भगवान्पर विश्वास नहीं करते, केवल बात ही करते हैं, यदि विश्वास करें तो वह कभी भी दूर नहीं हैं। अपना इष्ट जो भी हो एक ही रखें और उनकी आज्ञासे (प्रसन्नतासे) दूसरे अन्य देवताओंकी पूजा करें तथा अन्य देवताओंकी पूजा करते हुए भी उनसे अपने इष्टदेवका प्रेम माँगें और कुछ न माँगें। हमको यह विश्वास होना चाहिये कि इनकी कृपासे भगवान्में

प्रवचन—दिनांक १८।४।१९३७, प्रातःकाल ८.३० बजे।

प्रेम हो जायगा, क्योंकि ये भगवान्‌के समीप रहते हैं, इसलिये इनसे इष्टका प्रेम माँगनेमें हानि नहीं है। यदि नहीं भी माँगा और उत्तम कार्य करते जाओ तो प्रेम स्वतः ही होगा। प्रभुसे प्रेम माँगना सकामकी गिनतीमें नहीं है। भगवान्‌पर जिसका जितना प्रेम है, भगवान्‌का भी उसपर उतना ही अधिक प्रेम है। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री पतिसे बिछुड़नेपर प्रत्येकसे पतिके विषयमें ही पूछती है, ऐसी बात सुनकर उसका पति बड़ा प्रसन्न होता है, कहता है कि अहा इसका कितना प्रेम है। इसीलिये भगवान्‌से ऐसी ही प्रार्थना करो कि प्रभो आप मुझे आपमें प्रेम दें, आपका चिन्तन दें।

चिन्तन और प्रेम एक ही वस्तु है। चिन्तनसे प्रेम होता है और प्रेमसे चिन्तन होता है। आतुरता, व्याकुलतासे भगवान् शीघ्र मिलते हैं। हमें कहना चाहिये कि प्रभु मेरेमें शक्ति नहीं है, हे कृपालु प्रभु दया करें, प्रेम दें। इस प्रकार व्याकुलभावसे प्रार्थना करनी चाहिये। एक बात यह भी है कि भगवान्‌ने कहा है कि मुझे ज्ञान, यज्ञ, तप आदि नहीं रोक सकते, किंतु सत्संगमें मुझे रुकना पड़ता है। केवल भगवान्‌के प्रेम-रहस्यकी बातें करनेकी ही चेष्टा करते रहना चाहिये। भगवान्‌ने भी कहा है—**बोधयन्तः परस्परं** कथन करना भी सत्संग है। मेरे प्रेम, तत्त्व, रहस्य, प्रभावका प्रचार करना भी सत्संग है और परस्पर वार्तालाप करना भी सत्संग है। भक्तिमार्गमें सबसे अधिक सुन्दर श्लोक यही हैं—

मच्चित्ता मद्‌गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। ९-१०)

वे निरन्तर मेरेमें मन लगानेवाले और मेरेमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन, सदा ही मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ जिससे वे मेरेको ही प्राप्त होते हैं।

यह श्लोक पूरी गीतामें एक ही है। नौवें श्लोकका फल दसवाँ है। इस प्रकार करनेवालेको मैं ऐसा ज्ञान देता हूँ जिससे वह मुझको प्राप्त हो जाता है। **अनन्यचेताः सततं, मच्चित्ता** ही है। मछली-जैसा प्रेम, व्याकुलता होनी चाहिये। यहाँ जल तो प्रभु हैं और हमारा मन मछली होना चाहिये। एक क्षण भी जलसे अलग नहीं होना चाहिये, होते ही व्याकुलता होनी चाहिये। जिसके विस्मरणमें परम व्याकुलता हो, वही मच्चित्ता है। हर समय भगवान्‌का स्मरण करनेवालेसे एक क्षण भी भूल हो जाय तो वह बड़ा पश्चात्ताप करता है। कहता है भगवन्! मैं क्या करूँ, यह मन बड़ा पाजी है। प्रभो! मैं क्या करूँ, मरूँ या कटूँ! यह आपको भुला देता है। प्रभु दया करो, क्षमा करो।

इस प्रकार जिसको दुःख होगा, पश्चात्ताप होगा, उसका विस्मरण भला कैसे होगा। उनकी विस्मृति ही हानि है। सच्चा पश्चात्ताप होना ही विश्वास है और विश्वास होनेपर वह भूला नहीं जा सकता। भगवान्‌में ही चित्त रहे इसका कोई उदाहरण

नहीं है। स्त्री-संगका आनन्द भी नहीं है, देवताओंका आनन्द भी युक्तिसंगत नहीं है; क्योंकि ये पदार्थ तो मच्चित्तावालेको घृणित दीखते हैं।

त्रिलोकीका सुख नरकवत् प्रतीत होता है, इतनी बात तो वैराग्यसे ही हो जाती है। वैराग्यसे अधिक आनन्द उपरामतामें है। उपरामता भी इतनी हो कि संसारमें मन जाय ही नहीं। उपरामतासे अधिक लाभ ध्यानमें है और ध्यानसे अधिक लाभ उनकी प्राप्तिमें है।

गोपियाँ जो कुछ भी वार्तालाप करती थीं, विनोद करती थीं, केवल भगवान्‌की बातें ही करती थीं।

कभी-कभी कटाक्ष भी करतीं कि सखि! यह काला भौंरा देखते ही कृष्ण याद आता है। सखि! ऐसा कोई उपाय बताओ कि कृष्णको हम भूल जायँ, वह तो बड़ा निर्दयी है। इस प्रकार कटाक्ष किया करती थीं, परन्तु यह प्रेमका कटाक्ष है। आज हम यहाँ स्वर्गाश्रममें बैठे हैं। यहाँ हमें कुछ भी काम नहीं है, निश्चिन्त होकर आये हैं, फिर भी प्रेमके अभावके कारण ही हमारा भगवान्‌में प्रेम नहीं होता।

व्याकुलताके लिये आदर्श है राम तथा सीताका। सीताहरणके पश्चात् रामचन्द्रजी सीताको ढूँढ़ने निकलते हैं। प्रत्येक वृक्षसे पूछते हैं, पत्तोंसे पूछते हैं, भाई! क्या तुमने सीताको, वैदेहीको देखा है। रोते हैं, व्याकुल होते हैं, इस विरह-व्याकुलतासे भगवान् हमें शिक्षा देते हैं कि सीता मेरे लिये व्याकुल हो रही है, इसलिये मैं उससे अधिक उसके लिये व्याकुल हो रहा हूँ।

इस प्रकार भगवान् हमें यह शिक्षा देते हैं, यह कहते हैं कि तुम मेरे लिये व्याकुल होते रहोगे तो मैं भी तुम्हारे लिये व्याकुल

होता रहूँगा, तुम मेरे बिना नहीं रह सकोगे तो मैं भी तुम्हारे बिना नहीं रह सकूँगा। जब वर्षा-ऋतु आयी और मोर बोलने लगे तो रामचन्द्रजीको सीताकी याद आती है। प्रेम भयसे भी होता है, मारीच और कंसको भयके कारण भगवान् याद रहते थे। मारीच कहता है—

राममेव सततं विभावये भीतभीत इव भोगराशितः।
राजरत्नरमणीरथादिकं श्रोत्रयोर्यदि गतं भयं भवेत्॥
राम आगत इहेति शङ्कया बाह्यकार्यमपि सर्वमत्यजम्।
निद्रया परिवृतो यदा स्वपे राममेव मनसानुचिन्तयन्॥

(अध्यात्मरामायण ३। ६। २२-२३)

राज, रत्न, रमणी और रथ आदि (भोग-सामग्रियोंके प्रथम अक्षर 'र')-के कानोंमें पड़ते ही मुझे (रामकी याद आ जानेसे) भय उत्पन्न हो जाता है, इसलिये मैं भोग-समुदायसे भयभीत होकर निरन्तर 'राम' का ही ध्यान करता हूँ। 'यहाँ राम न आ गये हों' इस आशंकासे मैंने समस्त बाह्य कार्य छोड़ दिये हैं। जिस समय मैं निद्राके वशीभूत होकर सोता हूँ उस समय मन-ही-मन रामका ही स्मरण करता रहता हूँ।

भयसे चिन्तन करनेकी शिक्षा मारीचसे लेनी चाहिये। हमको तो उससे भी अधिक भय मानना चाहिये; क्योंकि हमको तो चौरासी लाख योनियोंका दुःख ही नहीं महादुःख होगा। हमेशा मृत्युकी स्मृति इसलिये करनी चाहिये ताकि उससे नारायणकी स्मृति हो जाती है कि चेतो, चेतो मृत्यु आ गयी, नारायणका नाम लो।

जिस प्रकार मकानमें साँप घुस जाय तो हमें डरके कारण नींद नहीं आती या हजारों रुपये साथमें हों और जंगलमें रात हो जाय तो चोर, डाकूका भय रहता है, यदि भय ही करना हो तो मृत्युका करना चाहिये और प्रेम करना हो तो प्रभुसे करना

चाहिये। भगवान्‌से प्रेम करनेकी विधि है, द्वेष करनेकी नहीं। प्रेम करनेमें देर हो तो आपत्ति नहीं है। जिस प्रकार हमारा देहमें प्रेम है, इससे भी अधिक प्रेम भगवान्‌में होना चाहिये।

प्राण अर्पण करना यानि हमारा जीवन भगवान्‌के अर्पण करना है। मनुष्य-शरीरके द्वारा भगवान्‌की प्राप्ति होगी, इसलिये यदि कोई हमारा प्राण लेकर भगवान्‌से मिला दे तो हम प्राण देनेके लिये तैयार हैं।

जिस प्रकार तुलसीदासजीके कहनेपर एक मनुष्य भालेपर कूद गया और भगवान्‌ने उसे बचाया। वहाँ तो तुलसीदासजीके कहनेसे उसे विश्वास था कि मेरे प्राण नहीं जा सकते, किन्तु शास्त्रोंमें कोई प्रमाण नहीं मिलता और प्राण गँवानेका तो शास्त्र भी निषेध करते हैं कि आत्महत्या नहीं करनी चाहिये। इन्द्रियोंका नाम भी प्राण है, इनको भी भगवान्‌में लगाना चाहिये। एक ओर तो भगवान् हैं, एक ओर प्राण हैं तो प्राणोंका त्याग कर देना चाहिये। हमारा जीवन केवल प्रभुके निमित्त ही है, हमारा और कोई भी प्रयोजन नहीं है। बस, भगवान् मिल जायँ। अपना प्राण भगवान्‌के लिये लगानेवाला ही **मद्‌गतप्राणा** है। उसका प्रत्येक कार्य खाना-पीना-सोना-बैठना सब कुछ भगवत्-हेतु ही है। उसके पास चर्चा भी भगवान्‌की ही है और वह कह-सुनकर मुग्ध होता रहता है और तो और वह प्रेममें पागल हो जाता है। अहा! प्रभुकी दया, प्रेम, महिमापर खयाल करो, वे कितने दयालु हैं। हम उनके वियोगको सहन कर रहे हैं, इसीलिये वे भी सहन कर रहे हैं। एक प्रेमी कहता है—हे भगवन्! आपके गुण, प्रेम, प्रभावकी कथामें ही हमारा समय बीते, सत्संगमें ही हमारा समय बीते, आप भले ही दर्शन न दें।

प्रभुमें इस प्रकार ऐसा रमण करे, जैसे मछली जलमें रमण

करती है। जिसमें रमण करे उसीमें संतुष्ट रहे, उससे अधिक कुछ भी नहीं समझे।

जीवन्मुक्त महात्मा कभी भी संसारसे लुभायमान नहीं होते। उनको तो प्रेमसे अधिक कुछ नहीं प्रतीत होता।

प्रभुसे प्रेम होनेपर उसकी स्थिति अद्‌भुत हो जाती है, उसके कानमें यदि भगवान्‌का नाम कहींसे सुनायी पड़ा तो वह दीपकपर पतंगकी भाँति उसी स्थानके लिये दौड़ पड़ता है। उसकी व्याकुलताका ठिकाना नहीं रहता। वह कहता है भगवन्, आपके गुण-प्रभावकी बातें होती रहें, फिर मुझे आप नरक भी दें तो कोई हानि नहीं, बस, वहाँ भी वही सत्संग और गुणानुवाद होता रहे। प्रेम हुए बिना ऐसी स्थिति नहीं होती। गोपियोंने नारदसे पूछा कि कृष्ण कभी हमारी भी सुध लेते हैं, याद करते हैं? जब बार-बार पूछनेपर नारदजी केवल हाँ, भर लेते हैं तो इतनेमें ही वे मुग्ध हो जाती हैं। भगवान्‌से ऐसा प्रेम हो कि वे प्रेममें बँध जायँ। जहाँ कीर्तन होता है वहाँ भी भगवान् रहते हैं, आते हैं, किन्तु हमारेमें इतना प्रेम नहीं है जिसके बलपर भगवान् प्रकट हों। हाँ, आसरा यह रहता है कि भगवान् दीनबन्धु हैं, दयालु हैं, हमारी सुध लेते हैं।

भगवान् न आयें तो न सही, भले ही अपने धाममें बैठे रहें, किन्तु हम तो उनके प्रेममें मग्न रहें। दर्शनका फल हम कथन—कीर्तनसे ही ले लें, उस समय यदि भगवान् आ भी जायँ तो उनका भी तिरस्कार कर दें। प्रेमभरी ऐसी चर्चा चलायें कि वह लुक-छिपकर हमारी बात सुनें और जबरदस्ती प्रगट हो जायँ। तब उनको कह दो कि बस, अब यहाँसे चले जाओ। जिस प्रकार नरसी मेहता कहते हैं— ***'ले जा तेरी गाँठड़ी अब आयो शरम गँवाय'*** कभी-कभी भगवान् अचानक आते हैं, कभी क्रमसे प्रेम,

विह्वलता, रोनेसे आते हैं। अचानक आना भक्तोंके लिये होता है, जैसे प्रह्लादजी, ध्रुवजी आदि। भगवान् व्याकुलतासे, प्रेमसे, भयसे भी आते हैं। सूरदासके लिये तो बिना बुलाये ही आ गये कि कहीं यह गड्ढेमें न गिर जायँ, इसलिये हाथ पकड़ा तो सूरदासको बड़ा आनन्द हुआ। जब भगवान्‌ने हाथ छुड़ाया तो बिगड़ गये और सुना दिया—

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानकर मोहि।
हिरदेसे जब जाहुगे पुरुष बदौंगो तोहि॥

हृदयमें भगवान्‌को बैठा लेना कुछ कठिन है, किन्तु चर्चा करना कुछ सरल है। प्रेम बढ़ाना कुछ सरल है चर्चा करनेसे भी प्रेम बढ़ेगा। सरल-से-सरल करनेलायक सुगम उपाय कीर्तन है, इससे भगवान् शीघ्र प्रकट होते हैं। इसमें तो मनकी भी गरज नहीं रहती, चाहे वशमें हो या न हो, कीर्तनसे भगवान् प्रसन्न होते हैं। खूब प्रेम हो, रोमांच होने लगे, तब भगवान् शीघ्र आते हैं। भक्त और महापुरुषोंका ऐसा सिद्धान्त है।

ऐसा निश्चय करे कि भगवान्‌का मिलना सरल है तो वह और भी सरल हो जाता है। यदि भगवान्‌का आना कठिन हो तो फिर लोगोंका विश्वास कम होने लगेगा, किन्तु सरल होनेसे विश्वास होता है और प्रयत्न होता है। सबसे शीघ्र मिलनेका उपाय प्रेम, विह्वलता एवं रोकर पुकारना है।

साधनकी उच्च स्थिति कैसे हो?

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

प्रभुसे प्रेमके लिये प्रार्थना करो कि प्रभु आपमें हमारा प्रेम नहीं है, यह तो आप जानते ही हैं। आपका प्रत्यक्ष दर्शन तो आपकी दयासे ही हो सकता है।

मन, बुद्धि, दृष्टि ये समान होने चाहिये, बाहरकी मुद्रा विचार और ध्यानकालमें एक रहती है।

सदैव चिन्तन रहनेके लिये ऐसा करना चाहिये कि यदि एक क्षण भी भूल हो जाय तो मृत्युके समान समझो। यदि मन स्वीकार नहीं करता तो अभी जैसा भगवान्‌के गुणानुवादमें समय बीत रहा है ऐसा तो उत्तम है, अन्यथा प्रभुसे प्रार्थना करो।

प्रभु मेरा मन आपको छोड़कर कहीं न जाय और पुकारना भी चाहिये हे नाथ! हे नाथ!! यह करुण भाव है।

प्रश्न—मेरे प्रयत्न करनेपर भी मन समझता नहीं है, यदि भगवान् या भक्त समझायें तो ही समझ सकता है। मनपर प्रभाव नहीं पड़ता है क्या करें? भगवान्‌में मन नहीं है यह मुझे प्रतीत होता है।

उत्तर—बात ऐसी है कि इसकी सँभाल रखनेसे मन स्वाभाविक वशमें हो जायगा। हर समय समता, शांति (प्रशांत मनसे), प्रसन्नता, भगवान्‌के विरहकी व्याकुलताको सँभालते रहना चाहिये और भगवान्‌को सँभालनेका फल भी यही उपरोक्त चार वस्तुएँ हैं।

मनका भागनेका कारण इसका पूर्वाभ्यास होना है। इसके लिये अभ्यास और वैराग्य दो ही उपाय हैं। आसक्ति काटनेका

उपाय वैराग्य है। अभ्यास करनेका उपाय चिन्तन है। प्रभुसे हमारा जो मिलन हो रहा है, वह चिन्तन है। इस शरीरको ठेकेकी मोटर समझो, जितना काम लेते बने ले लो। समयका ध्यान रहनेसे मनुष्य कुछ कर सकता है।

प्रश्न—यह मन आगे तरक्की नहीं करता, क्या करना चाहिये?

उत्तर—एकान्तमें बैठनेके बाद नाम, स्वरूपका चिन्तन, क्रीड़ा, गुणका चिन्तन जैसे प्रभुमें यह गुण है, वह गुण है, समता, शांति, दया, प्रेम, ज्ञान और वैराग्य आदि गुणोंका चिन्तन करते रहना चाहिये। व्यवहाररूपमें समय इस प्रकार बिताना चाहिये—

ध्यानकालमें जैसे सन्ध्या-जप आदि वाणीद्वारा हो रहा है, उसी प्रकार मनसे भगवान्‌के स्वरूपका चिन्तन करो, साकार रूपका चिन्तन और भी उत्तम है। स्वरूप चिन्तनसे भी अधिक गुण, प्रभाव, तत्त्वका चिन्तन करना चाहिये। जब वह रहस्य-तत्त्व-मर्म जान जायगा तो समझेगा कि भगवान् सर्वज्ञ हैं। जहाँ हम संसार समझते थे वहाँ भगवान् निकले, इस प्रकार जानना रहस्य खुलना है। रहस्य खुलनेपर श्रद्धा और प्रेम अत्यन्त हो जाता है, तब उसकी स्थिति अलौकिक हो जाती है। ऐसी स्थितिमें ही भगवान् प्रकट होते हैं। वैसे तो भगवान् चाहे जब दर्शन देते हैं। भगवान्‌को भी गरज रहती है। उनको कुछ प्रचार कराना हो तब वे भक्तद्वारा ही कराया करते हैं। भगवान्‌में विरह-व्याकुलता ऐसी होनी चाहिये जैसी भरतजीकी थी।

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

प्रेम, व्याकुलता सुतीक्ष्णके समान होनी चाहिये—

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥

भागवतमें रुक्मिणीजीकी प्रतीक्षा एवं विरह-व्याकुलताका वर्णन है, इससे भी अधिक गोपियोंकी विरह-व्याकुलता है। भगवान् भक्तका अभिमान तोड़कर विरह देते हैं। प्रेम-व्याकुलतामें अतिशय प्रेममें मुग्ध होनेपर प्रकट होते हैं। व्याकुलता प्रेमके बिना नहीं होती, प्रेमसे ही होती है। भयकी व्याकुलतामें भी प्रेम होता है, जैसे गजेन्द्रने पुकार लगायी थी। उत्तम तो यही है कि उनके न मिलनेके कारण व्याकुलता बढ़ती रहे।

संसारमें कंचन, कामिनी दो ही घाटियाँ हैं। कामीका स्त्रीमें, लोभीका रुपयोंमें प्रेम होता है। शास्त्र और सत्संगके द्वारा यह समझमें आता है कि भगवान् प्रकट होकर दर्शन देते हैं। ध्यानावस्थामें प्रसन्नता होनेपर उसको देहकी सुध नहीं रहती, वह चित्रके समान स्थिर हो जाता है। इससे लाखों गुनी प्रसन्नता भगवत्प्राप्तिमें होती है, उसकी तुलना ही नहीं की जा सकती, उस अवस्थाको ही सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। रोमांच, अश्रुपात आदि तो प्रभुप्राप्तिके पूर्वकी बात है, किंतु प्राप्तिके उत्तरकालमें जब वे अन्तर्ध्यान हो जाते हैं, तब व्याकुलता हो जाती है। विरहमें उन्मत्त हो जाता है, उसकी दशा गोपियों-सरीखी हो जाती है।

जिनको निराकारका अनुभव होता है उनको सगुणसे मिलनेकी आवश्यकता नहीं रहती। परमात्माके स्वरूपमें उसकी अचल स्थिति हो गयी, इसलिये उसको भ्रम भी नहीं होता। ऐसी स्थितिका वर्णन वह जानते हुए भी नहीं कर सकता। ज्ञान होनेपर उसको शरीरकी सुध नहीं रहती। जीवन्मुक्तका शरीर लोगोंकी दृष्टिमें है, किंतु उसके लिये नहीं है। ज्ञान होनेपर उसका शरीरसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। हम ब्रह्मको ऐसा भूल गये जैसे स्वप्नमें

शरीरको भी भूल जाते हैं। ज्ञानीके हृदयमें संसार स्वप्नवत् है, पर आत्मामें तो संसार तीनों कालमें नहीं है। उसको सृष्टि देखनेकी दृष्टि भी नहीं रहती तो फिर क्या देखे। अन्तःकरण जड़ होनेसे उसको हर्ष-शोक भी नहीं होता।

आत्माका मन-बुद्धिसे संयोग होनेपर ही हर्ष, शोक, पीड़ा होती है। जैसे किसी अज्ञानीका एक हाथ काटो तो वह कहता है मरा रे, मरा रे, किंतु ज्ञानीका अंग कटनेपर वह कुछ भी नहीं कहता, क्योंकि अज्ञानी देहको आत्मा मानता है, इसलिये कहता है और ज्ञानी नहीं मानता इसलिये कुछ नहीं कहता। वहाँ तो आनन्दके सिवाय कुछ है ही नहीं। गुणोंका कितना ही परिवर्तन हो, वह विचलित नहीं होता।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

दुःख होता है पर विचलित नहीं होता।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

(गीता १२। १७)

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है—वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥

(गीता १४। २४)

जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दुःख-सुखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रियको एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

(गीता २। ६४-६५)

स्वाधीन अन्तःकरणवाला पुरुष राग-द्वेषसे रहित अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको भोगता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नता अर्थात् स्वच्छताको प्राप्त होता है और उस निर्मलताके होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और प्रसन्नचित्तवाले पुरुषकी बुद्धि शीघ्र ही अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

(गीता १५। ५)

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है, जिनकी परमात्माके स्वरूपमें नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं—वे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपदको प्राप्त होते हैं।

ऐसे पुरुषको ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। अन्तकालमें प्रायः स्थिति उच्च नहीं रहा करती, इसलिये अभीसे अभ्यास करना चाहिये। विश्वास करनेपर तो स्थिति शीघ्र ही उच्च हो जाती है। जैसे हम रुग्ण अवस्थामें डॉक्टरको फीस देकर विश्वास करके शरीर उसीको सौंप देते हैं, किंतु उससे हानि भी हो सकती है। यदि इतना ही विश्वास करके यह शरीर प्रभुको सौंप दें तो कभी हानि नहीं होगी। यदि हमारी श्रद्धा होती तो हम वापस ही क्यों आते। वैद्यकी अपेक्षा, डॉक्टरकी अपेक्षा अधिक विश्वास करना चाहिये तो शीघ्र परमात्मप्राप्ति होती है। परमात्मप्राप्तिमें लोग प्रारब्धकी आड़ बताते हैं। यह बात नहीं है। श्रद्धा तो साकार और निराकार दोनोंकी प्राप्तिमें होनी चाहिये। '**मय्यासक्तमनाः**' मद्‌गत अंतरात्मामें प्रेमका समावेश है और अतिशय श्रद्धामें भी प्रेमका समावेश है। अत्यन्त प्रेमकी बात जहाँ हो, वहाँ निष्कामभाव समझना चाहिये। यदि दूसरी वस्तुमें आसक्ति है तो परमात्मामें प्रेम नहीं है। मनुष्यकी सब बात धारणा और विश्वासपर निर्भर है। महान् पुरुषपर और परमात्मापर जो जितना विश्वास करता है, उसको उतना ही लाभ है, क्योंकि उनका संग ही अमोघ है। वह खाली नहीं जा सकता। दुर्लभ इसलिये कि कठिन है, मूल्यवान् है। भगवान्‌से मिलनेके लिये उनके भजन-ध्यानकी चेष्टा करनी चाहिये, यदि भगवान् नहीं मिलें तो जीवन वृथा है। इसलिये सोते, उठते, चलते, फिरते सदा ही उनका स्मरण, चिन्तन करना चाहिये और साधन उच्चश्रेणीका बनाना चाहिये।

भगवान्‌के अवतारका रहस्य

बहुतसे लोग कहते हैं कि भगवान्‌का अवतार नहीं होता, किन्तु गीता आदि शास्त्रोंसे पता लगता है कि भगवान् अवतार लेते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ७-८)

हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ।

साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

कोई ऐसा मानते हैं कि अवतारवादका प्रकरण कुछ नीचे दर्जेका है। असली तो निर्गुण, निराकार है। परन्तु सच्ची बात यह है कि परमात्माका साक्षात् अवतार होता है।

यदि किसीको भगवान् मिल जायँ तो वह कह नहीं सकता और यह बात भी है कि विश्वास करना कठिन है, किंतु ऐसी बात भी है कि युक्तिसे शास्त्र और महापुरुषोंकी यह बात हमें माननी चाहिये। शास्त्रोंमें, उपनिषदोंमें भी निराकार, साकारका वर्णन है। गीतामें तो साक्षात् है। अर्जुनके कहनेपर विश्वरूप भगवान्‌ने फिर चतुर्भुज और फिर द्विभुज दर्शन दिये।

अवतार ऊपरसे नीचे उतरनेको कहते हैं। जैसे आकाशमें जल है वह बर्फरूपसे उतरे तो भी जल ही है। जितने आकारवाले शरीर थे सब निराकारके ही थे।

अव्यक्ताद्व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥

(गीता ८। १८)

सम्पूर्ण चराचर भूतगण ब्रह्माके दिनके प्रवेशकालमें अव्यक्तसे अर्थात् ब्रह्माके सूक्ष्म शरीरसे उत्पन्न होते हैं और ब्रह्माकी रात्रिके प्रवेशकालमें उस अव्यक्त नामक ब्रह्माके सूक्ष्मशरीरमें ही लीन हो जाते हैं।

जैसे पुष्प व्यक्त है और गंध अव्यक्त। कार्य स्थूल होता है कारण सूक्ष्म होता है। कार्यके नाशमें कारणका नाश नहीं होता। वायु, जल, अग्निकी उत्पत्ति आकाशसे और अंतमें क्रमसे आग जलमें, जल वायुमें, वायु आकाशमें मिल जाता है। जैसे पचास प्रकारके गहने गलानेसे एक सोना ही हो जाता है। पृथ्वी आदि क्रमसे आकाशमें और इसी प्रकार सब पदार्थ परमात्मामें विलीन हो जाते हैं। जब यह बात सबमें देखनेमें आती है तो ईश्वरके लिये प्रकट होना असम्भव नहीं है।

भगवान् कहते हैं मैं अजन्मा एवं अविनाशी हूँ, लीलासे प्रकट होता हूँ। ईश्वर और शक्तिमें भेद नहीं है। गुणसहित ही वह निराकारसे साकार होता है। परमात्मा ज्ञानानन्दघनसे प्रकट होते हैं और मूर्तिरूपमें प्रकट होते हैं। परमात्माको नहीं माननेमें हानि है माननेमें नहीं। एक नास्तिक है, एक आस्तिक है। आस्तिकका प्रमाण तो यह है—

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

(ईशावास्योपनिषद् १)

अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतनस्वरूप जगत् है यह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है, उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक (इसे) भोगते रहो (इसमें) आसक्त मत होओ (क्योंकि) धन— भोग्य-पदार्थ किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

हे अर्जुन! शरीर-रूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है।

अब भी नास्तिक नहीं मानता तो पूछना है कि तुम्हारा परदादा था उसका कुछ प्रमाण है? वह कहता है मैंने देखा तो नहीं, पर कह सकता हूँ, क्योंकि वे नहीं होते तो मैं कहाँसे आता और यह भी कहता है कि कारणके बिना कार्य नहीं होता।

इस न्यायसे जो वस्तु दीखती है, उसको हमारे परमात्माने पैदा किया है। प्रकृति माता है और पिता भगवान् हैं, इसलिये मानना चाहिये कि मनुष्य-शरीर कोई साधारण नहीं है। अन्य नक्षत्र आदि भी जो घूमते हैं, वे किसीके शासनमें हैं। जैसे यन्त्रमें चेतन शक्ति रहती है, उसी प्रकार प्रकृतिमें चेतनता है। यन्त्र चलते हैं और उनकी मरम्मत नहीं हो तो वे बंद हो जाते हैं, यदि परमात्मा नहीं हों तो यह कालयन्त्र कौन चलायेगा। वही चलाता है।

भगवान् दीखते नहीं, राजा हैं, शासक हैं तो दीखना चाहिये? हिन्दुस्तानका बादशाह विलायतमें रहता है, वहाँ जानेमें चार माह लग जाते हैं। छोटेसे बादशाहको देखनेमें चार माह लग जाते हैं तो अखण्ड ब्रह्माण्डके मालिक प्रभुको देखनेमें विलम्ब होना उचित ही है। ईश्वरको नहीं माननेमें पतन होगा, हानि होगी। एक कहता है कि परमात्मा है और एक कहता है नहीं है। जो कहता है कि है उसका मान अधिक होता है। जैसे पारस पत्थर दीखता नहीं तो क्या दुनियासे पृथक् हो गया? कदापि नहीं। वह है और समुद्र, पर्वत आदि स्थानोंमें अब भी मिलता है। जो कहता है ईश्वर नहीं है वह पागल ही है। जो कहता है उसके पास तो शास्त्र आदि प्रमाण हैं। जो नहीं कहता है उसके पास कुछ नहीं है, यह अप्रमाणित है।

प्रश्न—ईश्वरको व्यापक कहनेवाला पाप क्यों करता है? ईश्वर होनेसे विपरीत आचरण क्यों करता है?

उत्तर—ईश्वर तो हैं ही, पाप करनेवाला ठगता है, यदि वह यह जान ले तो पाप नहीं करेगा।

जैसे यहाँ सरकारकी सत्ता है। वह स्वतः यहाँ नहीं है फिर भी उसके विरुद्ध नहीं बोल सकते, बोलें तो दंड मिलेगा। यदि ईश्वरको मानता तो डर अवश्य रखता। जैसे सरकारका डर होनेके कारण बहुत-से लोग पाप, चोरी आदि नहीं करते। अवतारमें मनुष्योंकी अपेक्षा यह विलक्षणता होती है कि वे चाहे सो कर सकते हैं और हम नहीं कर सकते। उनमें कारक पुरुष (अंश अवतार) हैं जैसे वसिष्ठजी, वेदव्यासजी, ईसामसीह आदि। उनको ईश्वरने विशेष शक्तिद्वारा भेजा था।

साक्षात् अवतारमें जन्मसे ही ज्ञान रहता है, हमें नहीं रहता।

हमारा जन्म पाप-पुण्यसे होता है, इसीलिये हमको रोग, दुःख-सुख आदि होते हैं। ईश्वर पाप-पुण्यसे अवतार नहीं लेते, अपनी इच्छासे लेते हैं। उनका अवतार दिव्य होता है, उनको रोग नहीं होते। उनका जन्म ही प्रादुर्भाव है और मरण तिरोभाव (लोप होना) है। गीतामें भगवान् कहते हैं मैं अज-अविनाशी हूँ, जन्मता-सा प्रतीत होता हूँ। उसमें सन् और अपि शब्द दिये हैं; यानि होता हुआ भी होता हुआ-सा हूँ। मैं साधारण मनुष्य-शरीरधारी परमात्मा हूँ, मुझको लोग ईश्वर नहीं मानते। ईश्वरका अवतार मनुष्यसे विलक्षण ही होता है। भगवान् कृष्ण पैदा होते ही चतुर्भुजरूप हुए और देवकीसे कहा कि तुम्हें मालूम हो जाय कि तुम्हारे यहाँ भगवान् प्रकट हुए हैं, इसलिये मैंने चतुर्भुजरूप दिखाया। इस प्रकार सब युक्तियाँ बताकर पुनः बच्चे होकर रोने लगते हैं। इसके बाद वसुदेव-देवकीकी हथकड़ी-बेड़ी खुलना, बँध जाना, यमुना जलमें बाढ़ आकर कम हो जाना आदि विलक्षण ही है।

तिरोभावमें यह है कि भगवान् सशरीर ही चले गये, ताकि भविष्यमें मेरे उपासकोंको कोई हानि न हो, क्योंकि भगवान्‌को जैसे ही कोई पुकारता है वैसे ही आते हैं। भगवान्‌का प्रादुर्भाव और तिरोभाव विलक्षण होता है। दूसरोंको पता लगता है कि जन्मे-मरे, परन्तु उनमें स्वतंत्रता है। सारा संसार उनके संकल्पके अधीन है। उनकी इच्छामें कोई भी बाधा नहीं दे सकता। माता-पितासे पैदा नहीं होनेके कारण उनका शरीर दिव्य है, इसीलिये भगवान्‌ने कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

(गीता ४। ६)

मेरा जन्म प्राकृत मनुष्योंके सदृश नहीं है, मैं अविनाशीस्वरूप, अजन्मा होनेपर भी तथा सब भूत-प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके योगमायासे प्रकट होता हूँ।

दिव्यता जाननेसे साधक मुक्त हो जाता है। यह भी रहस्य है।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥
वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥

(गीता ७। २५-२६)

अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ, इसलिये यह अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्मरहित, अविनाशी परमात्माको तत्त्वसे नहीं जानता है अर्थात् मेरेको जन्मने-मरनेवाला समझता है और हे अर्जुन! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ, परन्तु मेरेको कोई भी श्रद्धा, भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता है।

सर्वज्ञता यह कि मैं भूत-भविष्य और वर्तमानके प्राणियोंको जानता हूँ। इसको योगी नहीं जानते। पातंजलयोग सूत्रमें कहा है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥

(पातंजलयोगदर्शन १। २४)

क्लेश, कर्म, विपाक और आशय—इन चारोंसे जो सम्बन्धित नहीं है (तथा); जो समस्त पुरुषोंसे उत्तम है, वह ईश्वर है।

मनुष्यके समान क्लेश ईश्वरमें नहीं होते। केवल अर्जुनको ही दिव्य बात बतायी, क्योंकि भगवान् कहते हैं तू अनघ है। विशेष विशेषता भागवतमें दिखलायी है—ब्रह्माजीने बछड़े हरण

किये, तब कृष्ण ही बछड़े, लाठी, ग्वाल-बाल सब बन गये। अवतारकी विशेषता श्रुति कहती है।

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

हृदयकी अस्मिताका उनके दर्शनसे भेदन हो जाता है। शंका नहीं रहती। प्रत्यक्ष वस्तु देखनेपर शंका नहीं रहती। परमात्मप्राप्तकी पहचान यह है कि जो निषिद्ध कर्म करते हैं वे परमात्मप्राप्त नहीं हैं।

कामनावालोंमें वह नहीं मिलता और जिसके दर्शन, स्पर्श, भाषणसे ईश्वरका ज्ञान हो उसे परमात्मप्राप्त मनुष्य समझना चाहिये। इसमें गौण बात इसलिये भी है कि जिसकी श्रद्धा नहीं होती, उसपर भी दर्शन, स्पर्श, भाषणका प्रभाव पड़ जाता है। जैसे गंगाजल पीनेसे शरीरमें शान्ति मिलती है, ऐसे ही उसकी सब शुद्धि हो जाती है और सब शंकाओंका अपने-आप समाधान हो जाता है। उसके दर्शनसे आनन्दके सिवाय और कुछ नहीं मिलता। केवल आनन्द-ही-आनन्द प्रतीत होता है। उसके नेत्र और शरीर दिव्य हो जाते हैं। उसकी पलक नहीं पड़ती और वह चित्र-जैसा हो जाता है। यहाँतक कि वह स्तुति भी नहीं गा सकता। प्रभु सामने खड़े हैं किन्तु प्रेममें मग्न है। सत्कार भी नहीं करता, आनन्दमें बेहोश हो जाता है। आश्चर्य करता है कि अहा भगवान् आ गये, फिर उसकी अद्‌भुत दशा हो जाती है, किन्तु जब होश आता है तब अपनेको सँभालता है और प्रभुका सत्कार करता है, स्तुति करता है।

कोई चाहता है भगवान् चाहे सो करें। कोई चाहता है कि संसारका कल्याण मेरे द्वारा सेवासे हो जाय। मुझे वह मुक्ति नहीं

चाहिये जिसमें आना नहीं पड़ता। वह भगवान्‌से प्रार्थना करता है कि मैं तो आपके साथ ही रहूँगा। भगवान्‌को जो जैसा चाहते हैं उनको वे वैसा ही देते हैं। वे भक्तके भावके अनुसार बन जाते हैं, जब वह कुछ भी नहीं कहता तो भगवान् स्वयं ही विचार करके आवश्यकतानुसार उसकी व्यवस्था कर देते हैं।

परीक्षा—जैसे ध्रुवको दर्शन दिया तो पहले शंख छुआ दिया और वेदोंका अध्ययन सिखा दिया। जब उसने सूक्तोंद्वारा प्रार्थना की तब दर्शन दिया पहले नहीं दिया, पहले तो भावना थी।

जैसे सावित्रीको यमराज मिले और वरदान भी सत्य हुए, किंतु उसका पति कहता है कि मुझे स्वप्न हुआ था, सावित्री कहती है सत्य बात थी, स्वप्न नहीं था। आपका शरीर सूक्ष्म था और मेरा स्थूल, मैंने देखा था। इससे घटना प्रमाणित होती है। यदि कोई झूठ माने तो उनके लिये यह प्रमाण है—रामकृष्ण परमहंस, गौरांग महाप्रभु, मीराबाई, नरसी मेहता, सूरदास, तुलसीदास इनको परमात्माका दर्शन हुआ है, उनको झूठ कैसे मानें। निराकार उपासकको साकार मिलनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि वह नहीं मानता है कि भगवान् सगुण हैं।

साक्षात्कार होनेके बाद क्या होता है?

साक्षात्कार होनेके बाद जैसे सामने दीवाल दीखती है पर मनमें भगवान् दीखते हैं। पहले वह भावना करता है फिर मनसे प्रार्थना करता है, तब वह साक्षात् दर्शन करने लगता है। जब प्रत्यक्ष मिल जायँ तब यह वरदान माँग ले कि यह रूप मुझे सर्वत्र सदा सर्वदा दीखे। तब उसको सब जगह भगवान् ही दीखते हैं। जबतक पहले मनसे देखता है तबतक कल्पना है, परन्तु भगवान्‌के मिलनेपर जो दीखता है वह कल्पना नहीं है, बल्कि साक्षात् है।

साक्षात् मिलनेपर जो बात कायम रहती है वह अपरोक्ष है। जैसे सावित्रीको यमराजने वरदान दिये तो सत्यता कायम रही यह अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) है, ध्रुवको शंख छुआया और जो बात कही वह अपरोक्ष रही, प्रह्लादको खंभ फाड़कर दर्शन दिये यह अपरोक्ष है।

परोक्ष-शास्त्रोंद्वारा समझा गया हो, अनुमान कर लिया गया हो, साक्षात् नहीं मिलना परोक्ष है, केवल अपनी दृष्टिसे मिलना परोक्ष ज्ञान है। भावनासे होना एवं कायम नहीं रहना परोक्ष ज्ञान है। साक्षात्कार किये हुए पुरुषमें राग, क्लेश, द्वेष, अस्मिता आदि नहीं रहते। समता, शांति, प्रेम, दया, ज्ञान, आनन्द, प्रसन्नता यह सब भगवान्‌के दर्शनसे मिल जाते हैं। प्रकाश और ज्ञान होता है, यह भगवान्‌के स्वरूपकी विलक्षणता है।

भगवान्‌का दर्शन करनेवालेके लिये सूर्य, चन्द्रका प्रकाश भी फीका हो जाता है। यह विलक्षणता है।

जहाँ भगवान् प्रकट होते हैं, उस जगह शांति, प्रकाश आदि समभावसे प्रतीत होते हैं।

शरीरकी दिव्यता ऐसी होती है कि उसके बराबर दुनियामें कोई दिव्यता नहीं, उसमें विलक्षण आकर्षण होता है। भगवान् एक ही साथ चाहे जितनी जगह प्रकट हो सकते हैं यह भी विलक्षणता है।

भरतजीका आदर्श प्रेम

रामायणमें भरतजीका प्रेम ही प्रेम है। अहा! भरतजीका नाम-उच्चारणमात्रसे रोमांच हो जाता है। यदि हम भरतजीके दास भी बन जायँ तो बेड़ा पार है। यदि रामायणमेंसे भरतजीका नाम निकाल दिया जाय तो रामायणमें प्रेमरस ही नहीं होगा, भरतजीके प्रेमके सम्बन्धमें वाल्मीकिरामायणमें भी यही बात है। ऐसा कौन होगा जिसको भरतजीकी कथापर अश्रुपात न हो। प्रेम तो भरतजी-सरीखा ही करना चाहिये। रामके वन जानेके बाद भरतजी जब नानाके यहाँसे आये, तब देखा नगर सुनसान है, बड़े विस्मित हुए। माता कैकेयीके महलमें सीधे आये, क्योंकि उन्हें भरोसा था कि पिताजी यहीं मिलेंगे।

आते ही पिताजीको न देखकर पूछा कि माताजी पिताश्री कहाँ हैं। माताजीने कहा कि जिसको बड़े-बड़े योगीलोग तपस्यासे पाते हैं ऐसे परमधामको पधार गये हैं। भरतजी एकदम व्याकुल हो गये, रोने लगे। कहा कि हाय! पिताजी जाते समय मुझे ज्येष्ठ भ्राताको भी नहीं सौंप गये, माताजी! हमारे लिये पिताजी क्या कह गये हैं? कैकेयी बोली—तुम्हारे पिता हे राम, हे सीता! हे लक्ष्मण! ऐसा कहते-कहते प्राण छोड़ सिधार गये। भरतजी बोले—माताजी! क्या वे यहाँ नहीं थे? कैकेयीने कहा—वे वनको गये हैं और तुमको चौदह वर्षका राज्य दिया है। पूरी घटना सुननेपर भरतजीने कहा—माता! मुझे रामजी मातृहत्यारा समझकर त्याग देंगे, अन्यथा मैं तुम्हारा सिर उतार लेता। अब तुम मेरी आँखोंके सामनेसे चली जाओ— ***लोचन ओट बैठ मुँहगोई।*** ऐसा कहकर भरतजी कौसल्याजीके महलमें गये। माता कौसल्याने भरतको

देखकर दौड़कर गलेसे लगा लिया और कहा बेटा भरत! माता कैकेयीके द्वारा तुमने समाचार सुना ही होगा। भरतजीने कहा— माँ! भैयाके वन जानेमें मेरी सम्मति नहीं थी, यदि मेरी सम्मति हो तो मुझे वह पाप लगे जो गुरुदेव वसिष्ठको मारनेपर हो। कौसल्याजी कहती हैं बेटा धन्य हैं तुम्हारे पिता, जो उन्होंने पुत्र-वियोगमें प्राण त्याग दिया। बेटा मैं प्राण भी नहीं त्याग सकी, क्या करूँ?

भरतजी रोते-रोते कहते हैं माताजी यदि मैं पैदा नहीं होता तो आज रामचन्द्रजीको वनवास क्यों होता। क्या अच्छा होता यदि माता कैकेयी मुझे जन्म लेते ही मार डालती। फिर भरतजीने पिताकी प्रेत-क्रिया की, उसके बाद सब बैठे। तब वसिष्ठजीने कहा— भरत! अब पिताजीकी आज्ञा मानकर राज्य स्वीकार करो, राज्याभिषेककी सब सामग्री तैयार है। भरतजी कहते हैं मैं आपकी आज्ञापालनमें विवश हूँ। भला बड़े भाईके रहते मैं कैसे राज्य ले सकता हूँ। फिर भरतजी सबसे प्रार्थना करते हैं कि सब लोग प्रातःकाल रामजीके पास चलें और उनको अवध ले आयें। सबकी सम्मति मानकर भरतजी प्रातःकाल वनको चल दिये। अहा भरतजी! अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे चित्रकूट जा रहे हैं। सब पैदल चल रहे हैं। किसीकी हिम्मत नहीं होती कि सवारीके लिये भरतजीसे प्रार्थना करें। सबने सोचा कि भरतजी माता कौसल्याका कहना मानेंगे, तब माता कौसल्याने कहा— बेटा! तुम्हारे कारण सबको पैदल चलना पड़ता है। तुम सवारी-पर बैठकर चलो तो अच्छा हो।

भरतजी कहते हैं— जननी! जब रामचन्द्रजी पैदल गये हैं तो मुझे तो सिरके बल चलना चाहिये था, किंतु आपकी आज्ञापालन करना भी मेरा धर्म होता है। ऐसा कहकर माता कौसल्याकी

आज्ञा मानकर भरतजी सवारीपर बैठ गये और सब साथवाले भी सवारीपर चलने लगे। आगे श्रृंगवेरपुरमें पहुँचे तो गुहने सोचा कि भरतके मनमें पाप नहीं होता तो साथमें सेना क्यों लाते? यदि इन सबके मनमें पाप होगा तो सबको गंगाजीमें डुबा दूँगा और पाप नहीं हुआ तो पार कर दूँगा।

गुहने भरतजीकी परीक्षाके लिये प्रयत्न किया, किंतु गुहको देखते ही भरतजी रो पड़े और कहा गुह भैया! यदि मैं पैदा नहीं होता तो रामजी वन क्यों जाते। भाई गुह! रामजी कौन-से वृक्षकी छायामें बैठे थे? कहाँ शयन किया था? गुहने वृक्ष बताया तो देखते ही भरतजी रो पड़े, कहते हैं अहा! जिन सीताजीने राजमहलोंमें शयन किया था, उन सीताजीको पत्तोंपर सोना पड़ा, फिर बिलख-बिलखकर रोने लगे।

आगे चलते-चलते भरद्वाजजीके आश्रममें पहुँचे। ऋषिने पूछा आप कैसे आये? भरतजी कहते हैं क्या आपको भी शंका होती है? ऋषि बोले—बेटा! मैं योगबलसे जानता हूँ कि तुम रामजीको लेने आये हो। ऋषिने भरतका सत्कार किया तो उन्होंने बड़ी कठिनतासे सत्कार स्वीकार किया। ऋषि बोले—भरत! रामजीने यहाँ एक रात्रि विश्राम किया था, अतः तुम भी यहाँ विश्राम करो और कहा—बेटा भरत! रामजी रातभर तुम्हारी याद करते रहे। रामजीको सारा ब्रह्माण्ड याद करता है और राम तुमको याद करते हैं। धन्य हो भरत! तुम उनसे भी अधिक हो। प्रातःकाल होते ही सब फिर चित्रकूटकी तरफ चल दिये। वहाँ रामचन्द्रजीको खोजते हैं; नहीं मिलनेपर रो पड़ते हैं, भगवान्‌की ओर देखते हैं तो पाँव आगे बढ़ते हैं, अपनी ओर देखते हैं तो रुक जाते हैं। माताकी करतूतकी ओर देखते हैं तो पैर पीछे पड़ते हैं। भरतजी

बिलखते-बिलखते कहते हैं कि अहा! रामजी जब सुनेंगे कि कैकेयीका पुत्र आया है तब तो वे मुझे देखना भी नहीं चाहेंगे, वन त्यागकर चले जायँगे, क्योंकि माताकी और मेरी करनी नीच है। ऐसा सोचते-सोचते आगे चले जा रहे हैं। इतनेमें भगवान्के चरणचिह्न मिले, बस, एकदम प्रसन्न होकर चरणधूलि उठाकर सिरपर चढ़ा लेते हैं अहा! परम श्रद्धा यही है। रामजीकी चरणधूलि धारण करके अपनी सुध भूल गये, चलते-चलते उनके प्रेमकी दशामें वृक्ष भी मुग्ध हो गये।

होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

चलते-चलते महाराजके पास पहुँचे, बस दूरसे ही प्रणाम किया और चरणोंमें गिर पड़े, किंतु रामजी भरतजीको नहीं पहचान सके, भगवान्को मालूम भी नहीं हुआ कि भरतजी आये हैं। तब लक्ष्मणजीसे नहीं रहा गया और रामचन्द्रजीसे कहा कि आपको भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। अहा रामजी 'भरत' नाम सुनते ही बिना देखे रो पड़े, अपने कपड़ोंकी सुध नहीं रही और उन्हें उठाकर एकदम हृदयसे लगा लिया।

उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।

भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान॥

रामने कहा भइया कैसे आये?

भरतने कहा कि गुरुदेव एवं मातासहित सारा समाज आया हुआ है। रामजी तुरन्त मिलने चले। गुरुदेवने पिताजीकी बात सुनायी। पिताजीकी बात सुनकर रामजी रो पड़े, फिर सबने पिताके नामसे स्नान किया और उस दिन निर्जल व्रत किया।

फिर भरतजी बोले—प्रभु! अब आप अवधको पधारिये।

रामजीने कहा—भाई! पिताजीकी आज्ञापालन करना अपना धर्म है। भरतजी बोले—प्रभु! यदि पिताजीने स्त्रीके वशमें होकर आपको वन दिया है तो आप मातासहित मुझे क्षमा कीजिये।

रामजी बोले—भाई! पिताजीने प्राण जानेपर भी अपना प्रण, धर्म निबाहा, उनकी आज्ञापालन करना हमारा धर्म है। भरतजीने कहा मैं वनमें जाता हूँ और आप राज्य कीजिये, किंतु रामजीने स्वीकार नहीं किया। तब भरतजी बोले—यदि आप नहीं चलेंगे तो मैं भी नहीं जाऊँगा। तब गुरु वसिष्ठने समझाया कि बड़ेकी आज्ञापालन करना अपना धर्म है, इसलिये ऐसा करो—चौदह वर्षकी अवधिके लिये रामजीसे कुछ आधार ले लो। तब भरतजीने चरणपादुका माँगी और रामजीने उन्हें सहर्ष दे दी। भरतजी खड़ाऊँ मस्तकपर धारणकर बोले, यदि आप चौदह वर्षके अंतमें नहीं आये तो मैं पन्द्रहवें वर्षके पहले दिन प्रात:काल ही अग्निप्रवेश कर जाऊँगा, अपने प्राण नहीं रखूँगा।

तब भरतजी वापस आये और रामजीकी चरणपादुका गद्दीपर रखकर स्वयं नंदीग्राममें रहने लगे और फलाहारी रहकर अपना जीवन भी रामकी तरह बिताने लगे। यदि राज्यकार्य कुछ आता तो चरणपादुकाको सुना देते और उनकी प्रेरणासे जो होता वह कह देते थे।

आज चौदहवें वर्षका एक दिन शेष रहा है, भरतजी सोच रहे हैं कि क्या रामजीने मुझे कुटिल जानकर छोड़ दिया है। अहा! लक्ष्मण तुमको धन्य है! तुम्हारा राममें पूर्ण अनुराग है, मुझको कुटिल जानकर रामजीने साथ नहीं लिया, किंतु—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

इस प्रकार विलाप कर रहे थे। इतनेमें हनुमान्‌जी आ गये और समाचार सुनाया कि भरतजी! तुम जिनको याद कर रहे हो, वे रामजी सीता-लक्ष्मणसहित आ पहुँचे हैं। ऐसा सुनते ही भरतजी एकदम प्रसन्न हो गये, मुग्ध हो गये। पूछा भाई तुम कौन हो? तुम्हें मैं क्या दूँ जिससे तुम्हारे ऋणसे उऋण हो जाऊँ। अहा! हनुमान्‌जी उनकी दशा देखकर मुग्ध हो गये और कहा धन्य हो भरतजी! श्रीरामजीका ऐसा भाई क्यों न हो। ऐसा ही होना चाहिये।

रामचन्द्रजीने नगरमें प्रवेश किया, भरतजी एकदम चरणोंमें गिर पड़े। रामजी सबसे इच्छानुकूल मिले। वहाँ सबने यही सोचा कि रामजी पहले मुझसे मिले, प्रभु अनेक रूप धारणकर एक क्षणमें ही सबसे मिल लिये और यह मर्म किसीने नहीं जाना—

छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

फिर रामचन्द्रजी महलमें जाकर माताओंसे मिले, प्रणाम किया। अहा! भरतजीका कितना आदर्श प्रेम है, इनके समान कोई नहीं हुआ। रामजीने कहा कि प्रेमी यदि कोई है तो भरत ही हैं। वनमें जाते समय भी रामने कहा, माता मैं वनवास भी तुम्हारी सम्मतिसे ही जाता हूँ और वह मेरे हितके लिये है, माता मैं धन्य हूँ कि मेरे परम प्रिय भाई भरतको राज्य मिलेगा, इससे बढ़कर और क्या हो सकता है, यद्यपि रामजी यह जानते हैं कि भरत कदापि राज्य नहीं करेंगे।

दशरथजीने भी मरते समय कहा था दुष्टा कैकेयी! भरत कदापि राज्य नहीं करेंगे, मेरा मरण होगा और तुझे कलंकका टीका लगेगा और अन्तमें हुआ भी यही।

अहा! धन्य है भरतजीके प्रेमको, जिसको दशरथजीने, रामजीने भी सराहा। हमलोगोंको भी भरतजीका आदर्श लेकर इतनी

विह्वलता रखनी चाहिये कि उसी समय रामजी आ जायँ। जैसे भरतजीके लिये आये। यदि भगवान्‌की कृपा है तो अवश्य मिलेंगे।

जब सबको मिले हैं तो हमको भी मिलेंगे। बस, प्रतीक्षा करनी चाहिये कि अब आये, अभी आये, कब आयेंगे, ऐसी रट लगानी चाहिये। विलम्बमें गद्‌गद वाणीसे प्रार्थना करनी चाहिये। प्रतीक्षामें भी नहीं आये तो ऐसी कल्पना करनी चाहिये कि हम प्रार्थना कर रहे हैं और कह रहे हैं—हे प्रभु! आप क्यों नहीं आते? आप शीघ्र आयें, हे नाथ! हे नाथ! शीघ्र पधारें।

पवित्र स्थान, भगवच्चर्चा, उत्तम काल—योग पाकर भी यदि विलम्ब होता है तो आश्चर्य है। हमलोगोंको विश्वास नहीं होता। विश्वास होनेपर उनके आनेमें कोई विलम्ब नहीं है।

भजनसे बढ़कर भी भगवान्के लिये रोना है

प्रश्न—प्रयत्नकी विफलतामें, निष्फलतामें उत्साहमें कमी होती है, क्या करें?

उत्तर—सिद्धान्त यही रखना चाहिये कि आनन्द और प्रसन्नता सदा ही बनी रहे। उसमें स्वाभाविक लाभ होता है, साथ ही भीतरी प्रयत्नकी वृद्धि होती है। श्रद्धाके योग्य तो भगवान् ही हैं, इसलिये मनुष्यको भगवान्में ही पूर्ण श्रद्धा करनी चाहिये। भगवान्से जो प्रार्थना करता है, प्रभु अन्तर्यामी होनेसे सब जान लेते हैं। कभी-कभी चित्तवृत्तियोंमें कुसंस्कार होनेसे रुकावट भी होती है। किंतु प्रभुकी दयासे एक दिनमें तो क्या एक क्षणमें भी सब कुछ हो सकता है। श्रद्धा और वैराग्य ही उत्साहसे साधन तेज करते हैं। भीतरी वैराग्य भी होना चाहिये। साधनसे वैराग्य और वैराग्यसे साधन तेज होता है। विवेकद्वारा वैराग्यसे साधन तेज हो जाता है और मनुष्य पराधीन होनेसे छूटनेके लिये प्रयत्न करता है। पहले तो यह श्रद्धा करनी चाहिये कि हमारा साधन बढ़ रहा है।

यह विश्वास रखे कि भगवान् मेरी पुकार सुन रहे हैं और सुनते ही हैं क्योंकि वे अन्तर्यामी हैं। भगवान्से यह माँगना चाहिये कि प्रभु मैं तुमसे भजनके सिवाय कुछ भी नहीं माँगता, दर्शनके लिये भी नहीं कहता, फिर इतनी कठोरता क्यों?

ऐसा विचार भजनमें सहायक होता है। नित्य रोना चाहिये और अनुभव करना चाहिये कि हमारी सुनवाई हो रही

है। जहाँतक हो सबको रोनेकी स्थिति प्राप्त करनी चाहिये, क्योंकि भजनसे बढ़कर यह भाव (रोना) है। भगवान्से प्रार्थना करनेपर वे अवश्य सुनते हैं, इसीलिये सदैव प्रसन्न रहना चाहिये और प्रसन्नतामें ही कार्य भी करना चाहिये। प्रभुकी दयाका भरोसा रखना सर्वोत्तम लाभदायक है, आशा-प्रतीक्षा भी अच्छा साधन है। जिस प्रकार फोड़ा मवाद बाहर आनेसे साफ होता है, उसी प्रकार रोनेसे आंतरिक फोड़ेका मवाद बाहर आ जाता है। यह समझो कि पाप तो हमारेमें हैं नहीं और दोषोंका स्वभाव प्रभुकृपासे नहीं रहता।

दृढ़ धारणासे भगवत्प्राप्ति

ध्यानमें सबसे अधिक सहायक वैराग्य है। उत्तम स्थानपर आसन स्थापित करना चाहिये, यदि भगवच्चिन्तन करते-करते ही हमारी मृत्यु हो जाय तो इससे अधिक उत्तम कोई वस्तु नहीं है, मनकी सारी कामनाएँ त्याग दे और आलस्य आये तो आँख खोलकर एवं आलस्य नहीं आये तो आँख बंद करके ध्यान लगाये और सोचे कि यहाँ अटल शांति है। ज्ञानके बाहुल्यमें आलस्य नहीं रहता। भगवान् कहते हैं—

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥

(गीता ६। १४)

ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित रहता हुआ भयरहित तथा अच्छी प्रकार शान्त अन्तःकरणवाला और सावधान होकर, मनको वशमें करके, मेरेमें लगे हुए चित्तवाला और मेरे परायण हुआ स्थित होवे।

इस प्रकार मनको लगाये, यदि नहीं लगे तो समझाये कि धिक्कार है तुझे, भला रामसे अधिक कुछ है क्या? अचिन्त्य ध्यानके लिये भगवान् बताते हैं—

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥

(गीता ३। २४-२५)

यदि मैं कर्म न करूँ तो यह सब लोक भ्रष्ट हो जायँ और मैं वर्णसंकरका करनेवाला होऊँ तथा इस सारी प्रजाका हनन करनेवाला अर्थात् मारनेवाला बनूँ। इसलिये हे भारत! कर्ममें आसक्त हुए अज्ञानीजन जैसे कर्म करते हैं वैसे ही अनासक्त हुआ विद्वान् भी लोक-शिक्षाको चाहता हुआ कर्म करे।

ध्यानमें यदि भक्ति हो तो अधिक उत्तम है, ऐसे ध्यानमें यह श्लोक सहायक है—

मच्चित्ता मद्‌गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०। ९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं।

प्रभुका ध्यान करते हुए भी आनन्द नहीं आता क्या करें?

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

(भीष्मस्तवराज ९२)

भगवान् श्रीकृष्णको एक बार भी प्रणाम किया जाय तो वह दस अश्वमेध यज्ञोंके अन्तमें किये गये स्नानके समान फल देनेवाला होता है। इसके सिवा प्रणाममें एक विशेषता है—दस अश्वमेध करनेवालेका तो पुनः इस संसारमें जन्म होता है, किन्तु श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला मनुष्य फिर भव-बन्धनमें नहीं पड़ता।

मन्दिरमें इस प्रकार प्रतिदिन प्रणाम करनेसे उत्तम लाभ होता है। यदि सुतीक्ष्ण, हनुमान् आदिके समान लाभ लेना हो तो मन्दिरकी शोभाकी ओर नहीं देखकर केवल स्वरूपका निरीक्षण करता रहे, केवल स्वरूपका निरन्तर स्मरण करना चाहिये। नामजप पापोंका नाश करता है।

रामायण पढ़ते समय मेरे सामने रामजीकी मूर्ति आ जाती है। रामका उच्चारण करते ही स्वरूप सामने आ जाना चाहिये और स्वरूप सामने आते ही जीवनी भी सामने आ जानी चाहिये।

जब आसक्तिका अभाव होता है तब चित्तवृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं। हम मूर्तिको देखते हैं मूर्तिको देखकर हमें भगवान्‌का स्वरूप याद आ जाना चाहिये।

मानसिक जपसे बढ़कर जपको गुप्त रखना है, उससे अधिक ध्यान एवं अर्थसहित और उससे अधिक मूल्यवान् जप निष्काम भावका है। शरीरमें जितने रोम हैं वे जपते-जपते खड़े हो जायँ तो समझना चाहिये कि यह सबसे उच्चकोटिका जप है। सबमें श्रद्धा ही प्रधान है। रग-रग बोले रामजी। निर्दोष भी भगवान्‌की दयासे होते हैं। सब ओरसे मन हटकर केवल भगवान्‌में रह जाय, इसका उपाय उत्कंठा है। जैसे भूखेको भोजनकी उत्कंठा, प्यासेको पानीकी उत्कंठा रहती है, इसी प्रकार भगवान्‌की उत्कंठा होनेसे भगवान् मिलते हैं। बीमारीमें रोटी खारी लगती है एवं बीमारी मिटनेपर मीठी। हमारी भगवान्‌में रुचि होना बीमारी मिटाना है। बीमारी है दुर्गुण, पापकर्म एवं हृदयमें संचित कर्म, इनकी औषधि भगवान्‌का जप है। इससे सब पापोंका नाश हो जाता है और पाप नष्ट होते ही भगवान्‌से मिलनेकी उत्कंठा जागृत हो जाती है। भगवान्‌के जल्दी मिलनेका उपाय— उत्कंठा बढ़नेसे भगवान् शीघ्र मिलते हैं। सदैव कहता रहे भगवान् कैसे मिलेंगे, भगवान् कैसे मिलेंगे। जो कोई भी मिले उनको यही पूछे और कुछ पूछे ही नहीं। एक आदमी एक महात्माके पास गया, महात्माने कहा— पंचाग्नि तपो, यही किया। दुबारा आया तो कहा— केवल दुग्ध पान करो, अन्न छोड़ो, वह भी किया। तीसरी बार आया महात्माने कहा— कुछ मत खाओ उपवास करो, वह भी किया। चौथे बार कहा इस प्रकार भगवान् नहीं मिलते, बड़ी कठिनाईसे मिलते हैं। जल भी छोड़ दो तो मिलेंगे और भजन

किया करो। वह भी किया। पाँचवीं बार कहा बड़ी कठिन तपस्यासे मिलते हैं, प्रातःकालसे सायंकालतक सूर्यकी आराधना करो। वह भी किया। छठीं बार आनेपर कहा—श्वास भी मत लो। ऐसा ध्यान लगाओ जिससे हमारी सुध भी नहीं रहे। वह आदमी सब करता गया कि बस, भगवान् अब मिले, भगवान् अब मिले।

भगवान्‌ने देखा कि अब यह बिना मिले नहीं मानेगा तो झट आ गये। भगवान्‌को उसने कहा मैंने ऐसा सुना है कि आप तो बड़ी कठिनतासे मिलते हैं। आप तो शीघ्र ही पधारे। भगवान्‌ने कहा भाई मैंने सोचा तुम नहीं मानोगे, हठ नहीं छोड़ोगे, इसलिये आना पड़ा। मतलब यह नहीं है कि इस प्रकार सबका ही कहना करे, किन्तु भावना श्रेष्ठ होनी चाहिये। जो ऐसी धारणा कर ले कि हमको कितनी भी कठिनाई हो भगवान्‌से मिलेंगे तो अवश्य मिलेंगे। यदि हमको मिलना ही है तो कठिनाई क्या चीज है।

जब भगवान् देख लेते हैं कि यह धन्धोंमें लगा है, मेरे बिना काम चल रहा है तो वे और भी ढील दे देते हैं। हिम्मत और शूरवीरतासे भगवान् शीघ्र मिलते हैं। शूरवीरता ऐसी होनी चाहिये कि अपने आपको होम दे। यह धारणा कर ले कि प्राण भले ही चले जायँ भगवान्‌से मिलना ही है। भगवान्‌से ही कटिबद्धता माँगे, वही देते हैं अब भय किस बातका? अपने आपको अर्पण करना ही शरण है।

सुन्दर सोई सूरमा लोट पोट हो जाय।
ओट कछू राखे नहीं चोट मूँह पर खाय॥

प्रह्लादके समान अटल विश्वासी हो जाय। रतनकुँवरके समान हँसता रहे। भगवान् केवल पकानेके लिये ही, शूरवीर बनानेके लिये ही उसकी परीक्षा लेते हैं जिससे फेल नहीं हो।

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

गोरखपुर-२७३००५	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस	© (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स २३३६९९७
	website:www.gitapress.org / e-mail: booksales@gitapress.org	
दिल्ली-११०००६	२६०९, नयी सड़क	© (०११) २३२६९६७८; फैक्स २३२५९१४०
कोलकाता-७००००७	गोबिन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गाँधी रोड	© (०३३) २२६८६८९४;
	e-mail:gobindbhawan@gitapress.org	फैक्स २२६८०२५१
मुम्बई-४००००२	२८२, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)	
	मरीन लाईन्स स्टेशनके पास	© (०२२) २२०३०७१७
कानपुर-२०८००१	२४/५५, बिरहाना रोड	© (०५१२) २३५२३५१; फैक्स २३५२३५१
पटना-८००००४	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने	© (०६१२) २३००३२५
राँची-८३४००१	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर	© (०६५१) २२१०६८५
सूरत-३९५००१	वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने, भटार रोड	
	e-mail: suratdukan@gitapress.org	© (०२६१) २२३७३६२, २२३८०६५
इन्दौर-४५२००१	जी० ५, श्रीवर्धन, ४ आर. एन. टी. मार्ग	© (०७३१) २५२६५१६, २५११९७७
जलगाँव-४२५००१	७, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास	© (०२५७) २२२६३१३ ; फैक्स २२२०३२०
हैदराबाद-५०००९५	४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार	© (०४०) २४७५८३११
नागपुर-४४०००२	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारी रोड	© (०७१२) २७३४३५४
कटक-७५३००९	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी	© (०६७१) २३३५४८१
रायपुर-४९२००९	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक	© (०७७१) ४०३४४३०
वाराणसी-२२१००१	५९/९, नीचीबाग	© (०५४२) २४१३५५१
हरिद्वार-२४९४०१	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार	© (०१३३४) २२२६५७
ऋषिकेश-२४९३०४	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम	© (०१३५) २४३०१२२,
	e-mail:gitabhawan@gitapress.org	२४३२७९२
कोयम्बटूर-६४१०१८	गीताप्रेस मेंशन, ८/१ एम, रेसकोर्स	© (०४२२) ३२०२५२१
बेंगलोर-५६००२७	१५, फोर्थ 'इ' क्रास, के० एस० गार्डेन, लालबाग रोड	© (०८०) २२९५५१९०, ३२४०८१२४

स्टेशन-स्टाल—

दिल्ली (प्लेटफार्म नं० ५-६); **नयी दिल्ली** (नं० १६); **हजरत निजामुद्दीन** [दिल्ली] (नं० ४-५); **कोटा** [राजस्थान] (नं० १); **बीकानेर** (नं० १); **गोरखपुर** (नं० १); **कानपुर** (नं० १); **लखनऊ** [एन० ई० रेलवे]; **वाराणसी** (नं० ४-५); **मुगलसराय** (नं० ३-४); **हरिद्वार** (नं० १); **पटना** (मुख्य प्रवेशद्वार); **राँची** (नं० १); **धनबाद** (नं० २-३); **मुजफ्फरपुर** (नं० १); **समस्तीपुर** (नं० २); **हावड़ा** (नं० ५ तथा १८ दोनोंपर); **कोलकाता** (नं० १); **सियालदा मेन** (नं० ८); **आसनसोल** (नं० ५); **कटक** (नं० १); **भुवनेश्वर** (नं० १); **अहमदाबाद** (नं० २-३); **राजकोट** (नं० १); **जामनगर** (नं० १); **भरुच** (नं० ४-५); **इन्दौर** (नं० ५); **वडोदरा** (नं० ४-५); **औरंगाबाद** [महाराष्ट्र] (नं० १); **सिकन्दराबाद** [आं० प्र०] (नं० १); **गुवाहाटी** (नं० १); **खड़गपुर** (नं० १-२); **रायपुर** [छत्तीसगढ़] (नं० १); **बेंगलोर** (नं० १); **यशवन्तपुर** (नं० ६); **हुबली** (नं० १-२); **श्री सत्यसाईं प्रशान्ति निलयम्** [दक्षिण-मध्य रेलवे] (नं० १) एवं **अन्तर्राज्यीय बस-अड्डा, दिल्ली**।

फुटकर पुस्तक-दूकानें

चूरू-ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क, **ऋषिकेश**-मुनिकी रेती, **तिरुपति**-शॉप नं० ५६, टी० टी० डी० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, **बेरहामपुर**- म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, ब्लाक-बी, शॉप नं० ५७—६०, प्रथम तल, **गुजरात**-सन्तराम मन्दिर, नडीयाड।

Code 1681 ▲